वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७
ISSN 2582-0656
9 772582 065005
विवेक ज्योति
वर्ष ५८ अंक ११
नवम्बर २०२०
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

नवम्बर २०२०

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५८
अंक ११

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

ISSN 2582-0656

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

यह मूर्ति श्रीमाँ सारदा देवी की १५०वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में बनायी गयी थी। इस मूर्ति का परिभ्रमण तमिलनाडु और पुण्डुचेरी के ५२ स्थलों पर दिनांक १२ नवम्बर, २००३ से १६ दिसम्बर, २००३ तक कराया गया था। वर्तमान में यह मूर्ति रामकृष्ण मठ, चेन्नैई के पुराने मन्दिर के बरामदे में है।

नवम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

१४	**दीपावली**
१६	**भाई दूज**
२०	**छठ पूजा**
२६	**स्वामी सुबोधानन्द**
२९	**स्वामी विज्ञानानन्द**

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
डॉ. अरविंद कांकरिया, करेली, नरसिंहपुर (म.प्र.)	१,०००/-
डॉ. विजय बहादुर सिंह, राजनांदगाँव (छ.ग.)	१,०००/-
श्री जयप्रकाश बाबूलाल शर्मा, कान्नाड, औरंगाबाद	१,०००/-

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६२३.	....	द लाइब्रेरी, दून लाइब्रेरी एंड रिर्सच सेंटर, देहरादून (उ.ख.)
६२४.	" "	द डायरेक्टर, सॉग स्टेन लाइब्रेरी, देहरादुन (उ.ख.)
६२५.	" "	महात्मा खुशीराम पब्लिक लाइब्रेरी एंड रीडिंग रूम, देहरादून
६२६.	" "	द प्रिंसिपल, राजकीय पूर्व मा. विद्यालय, राजपुर रोड, देहरादून
६२७.	" "	द प्रिंसिपल, राजकीय पूर्व माध्यामिक विद्यालय, धरमपुर, देहरादून

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारी इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959**

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

वर्ष ५८ नवम्बर २०२० अंक ११

महर्षि व्यासकृत श्रीभगवतीस्तोत्रम्

जय भगवति देवि नमो वरदे, जय पापविनाशिनी बहुफलदे।
जय शुम्भनिशुम्भकपालधरे, प्रणमामि तु देवि नरार्तिहरे।।
जय चन्द्रदिवाकर नेत्रधरे, जय पावकभूषितवक्त्रवरे।
जय भैरवदेहनिलीनपरे, जय अन्धकदैत्यविशोषकरे।।
जय महिषविमर्दिनि शूलकरे, जय लोकसमस्तकपापहरे।
जयदेवि पितामहविष्णुनुते, जय भास्करशक्रशिरोऽवनते।।
जय षण्मुखसायुधईशनुते, जय सागरगामिनि शम्भुनुते।
जय दुःखदरिद्रविनाशकरे, जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे।।
जय देवि समस्तशरीरधरे, जय नाकविदर्शिनि दुःखहरे।
जय व्याधिविनाशिनि मोक्षकरे, जय वाञ्छितदायिनि सिद्धिवरे।।

– हे वरदायिनी, पापनाशिनी, बहुफलदायिनी देवि भगवति! तुम्हारी जय हो। हे शुम्भ-निशुम्भ-मुण्डधारिणी, नर-पीड़ाहारिणी देवि! तुम्हारी जय हो। हे सूर्य-चन्द्र रूपी नेत्रधारिणी, अनलसम उज्ज्वल मुखविभूषिता, भैरव-तनलीना, अन्धकासुर-शोषिणी देवि! तुम्हारी जय हो। हे महिषासुरमर्दिनी, शूलधारिणी, लोक-समग्रपापहारिणी, ब्रह्मा-विष्णु-सूर्य-इन्द्र द्वारा प्रणमिता देवि! तुम्हारी जय हो। सायुध कार्तिकेय और शिव वन्दिता, सिन्धुगामिनी गंगा, दुख-दारिद्र्यनाशिनी, पुत्र-कलत्रवर्द्धिनी देवि! तुम्हारी जय हो। हे सकलतनधारिणी, स्वर्गलोक का दर्शन करानेवाली, दुखहारिणी, व्याधिनाशिनी, मोक्षकारिणी, मनोवांछित-फलदायिनी, सिद्धिवरा देवि! तुम्हारी जय हो।

पुरखों की थाती

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्रः मित्राणि बान्धवाः।
ये च तैः सह गन्तारः तद्धर्मात्सुकृतं कुलम्।।७०३।।

– संसार के अधिकांश पुत्र, मित्र तथा सम्बन्धी साधु-सन्तों से दूरी बनाये रहते है, तथापि जो लोग उनके साथ व्यवहार रखते हुए उनका संग करते हैं, उस धर्म से उनका कुल धन्य हो जाता है।

दर्शन-ध्यान-संस्पर्शैर्मत्स्यी कूर्मी च पक्षिणी।
शिशु पालयते नित्यं तथा सज्जनसंगतिः।।७०४।।

– जैसे मछली अपने बच्चों का देखते रहने मात्र से, मादा कछुवा अपने बच्चों का ध्यान के द्वारा और चिड़िया अपने बच्चों का स्पर्श मात्र से पालन करती हैं, वैसे ही साधु-सज्जनों की संगति भी व्यक्ति का (तीनों तरह से) पालन करती है।

यावत् स्वस्थमिदं देहं यावन् मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्म हितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यसि।।७०५।।

– जब तक यह शरीर स्वस्थ है और जब तक मृत्यु दूर है, तभी अपना कल्याण अर्थात् परमात्मा को प्राप्त कर लेना चाहिए, क्योंकि प्राणों का नाश हो जाने पर भला तुम क्या कर सकोगे? (भर्तृहरि)

सम्पादकीय

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव

तैत्तिरीयोपनिषद में वेदाध्ययन करने के पश्चात् जब शिष्य अपने गृह हेतु प्रस्थान करने को तत्पर होता है, तब गुरु उसे परमार्थसंयुक्त व्यावहारिक शिक्षा देते हैं, जिसका सम्यक् आचरण करने से वही शिष्य की उपासना बन जाती है। आज भी यह पद्धति विश्वविद्यालयों में है, जब वहाँ दीक्षान्त समारोह होता है, तो उसमें कुलपतिजी के द्वारा छात्रों को उपनिषद के इस मन्त्र की शपथ दिलायी जाती है। उनमें से कुछ मन्त्रों का मैं यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ –

सत्यं वद। धर्मं चर।... स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।[१]

– सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद नहीं करना चाहिए। देव और पितृ कार्यों में प्रमाद नहीं करना चाहिए। माता-पिता, आचार्य और अतिथि को देव समझो। अर्थात् इनकी देव-भावना से सेवा करो।

शास्त्रों में माता-पिता की महती महिमा बताई गयी है। उन्हें प्रथम गुरु स्वीकार किया गया है। यहाँ तक कि परमार्थ प्राप्ति के लिए भी निष्ठापूर्वक मातृ-पितृभक्त को उनकी सेवा का उपदेश है। महाभारत में एक व्याध ने अपने माता-पिता की सेवा से ही उच्च अवस्था को प्राप्त किया था। श्रवण कुमार की मातृ-पितृभक्ति लोकविख्यात है।

माता-पिता की पूजा करते पुत्र-पुत्री

ये उपदेश केवल शास्त्रों के पन्नों में ही सिमटे हुए नहीं हैं, बल्कि आज भी करोड़ों लोग अपने माता-पिता की सेवा कर अपना जीवन धन्य कर रहे हैं। जिन माता-पिता ने अपना सब कुछ अपने पुत्रों को समर्पित कर दिया, वे लोग तो सेवा करते ही हैं, लेकिन कुछ ऐसी घटनाएँ हमें ज्ञात हैं, जिनमें पिता ने अपने अन्य सन्तति-व्यामोह में अपने सज्जन पुत्रों को अपनी सम्पत्ति में से कुछ भी नहीं देने की विवशता प्रकट की, लेकिन उन महान पुत्रों ने सानन्द उनकी आज्ञा शिरोधार्य की, उनकी सेवा में आजीवन लगे रहे और जीवन में अपार सम्पत्ति और यश के अधिकारी बने। असंख्य उदार निष्ठावान पुत्र-पुत्रियाँ इस धरा पर आज भी विद्यमान हैं, जो अपने पारिवारिक कर्तव्य-पालन में संलग्न हैं।

वृद्ध और बच्चे समान प्रवृत्ति के हो जाते हैं। जिस प्रकार हम शिशु की, छोटे बच्चों की अनगिनत त्रुटियों की हँसते हुए उपेक्षा कर देते हैं और उनका सब प्रकार से ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार वृद्ध माता-पिता की व्यावहारिक त्रुटियों पर ध्यान न देकर उनकी सेवा करनी चाहिए।

लेकिन दुर्भाग्य है कि अखबारों, यूट्यूब आदि में प्राय: सूचनाएँ आती रहती हैं कि लोग धन-सम्पत्ति के स्वार्थ के लिये, कभी नशे में या अन्य स्वार्थगत कारणों से माता-पिता के साथ विवाद करते हैं, मार-पीट करते हैं, माता-पिता का त्याग कर देते हैं, यहाँ तक कि हत्या भी कर देते हैं।

भारत जैसे महान देश में जहाँ श्रीराम और श्रीकृष्ण सदृश महान मातृ-पितृभक्त सन्तति अवतरित हुई, जहाँ नचिकेता जैसे पितृहितैषी ने जन्मग्रहण किया, उस भारत देश में माता-पिता के प्रति ऐसा जघन्य अपराध अत्यन्त निन्दनीय है।

निम्नलिखित दो घटनाएँ मैंने किसी के व्याख्यान में सुनी थी, संक्षेप में उसका उल्लेख कर रहा हूँ। एक पिता ने अपना सब कुछ लगाकर अपने एकलौते पुत्र को पढ़ाया। घर बनवा दिया था। पुत्र के लिये कोई कमी नहीं की। यहाँ तक कि उसके जीवन को बचाने के लिए अपनी एक किडनी भी दे दी थी। बाद में पुत्र का विवाह

हुआ। साथ में रह रहे थे। हठात् एक दिन पुत्र ने पिता को कहा कि आप यह घर छोड़कर चले जाइये। पिता ने कहा – बेटा! मेरे पास जो कुछ भी था, मैंने सब कुछ तुम्हें दे दिया, अब इस वृद्धावस्था में मैं कहाँ जाऊँ। उसने कहा कि आप कहीं भी जाइये, लेकिन यह घर छोड़ दीजिए, क्योंकि हमारे परिवार में अब आपके कारण परेशानी हो रही है। पिता संकट में पड़ गए। उन्होंने यह घटना अपने एक मित्र को जाकर बताई। उनके मित्र डॉक्टर थे। उन्होंने जाकर लड़के को कहा, बेटा! जब तुम छोटे थे, तब तुम्हारे जीवन को बचाने के लिए एक व्यक्ति ने अपनी किडनी तुम्हें दान कर तुम्हारे जीवन को बचाया। आज तुम्हारी सेवा की उसे आवश्यकता है। पुत्र सुनकर विस्मित हो गया। उसने कहा, ठीक है, मैं उनके लिए कुछ भी करने को तत्पर हूँ। डॉक्टर ने वह प्रमाणपत्र निकालकर दिखाया। लड़के ने जब वह नाम पढ़ा, तो उसके पैरों तले धरती खिसक गयी। वह उसके पिताजी का नाम था। उसने पिता से क्षमा माँगी और कहा कि अब आप इस घर में ही रहेंगे, भले ही दूसरे लोग चले जायँ। मन में पिता को घर से निकालने की जो प्रवृत्ति आई, वह अत्यन्त गर्हित थी, किन्तु बाद में उसे सद्बुद्धि आ गई, वह प्रशंसनीय थी।

दूसरी घटना है। एक वृद्धा माताजी का एक ही लड़का था। माताजी ने उसे बड़ी कठिनाई से खेती-बारी बेचकर पढ़ाया। वह लड़का नौकरी करने विदेश चला गया। वहीं वह विवाह कर रहने लगा। वर्षों माँ की कोई सुधि नहीं ली। एक दिन उसने आकर माँ से कहा कि माँ अब तुम बूढ़ी हो गयी हो, यहाँ अकेले कैसे रहोगी। चलो, अब वहीं हमलोगों के साथ रहना। माँ ने 'हाँ' कहा। उसके बाद बेटे ने कहा, माँ, जब यहाँ हमलोगों को नहीं रहना है, तो यहाँ की घर-जमीन बेच देते हैं। माँ ने सरलता से कहा, बेटा, अब तुम जैसा उचित समझो, वैसा करो, तुम्हारे सिवाय मेरा दूसरा कौन है? लड़के ने घर-जमीन सब कुछ बेच दिया। एक दिन माँ को कहा कि कल हमलोग इस घर को छोड़ देंगे और विदेश चले जाएँगे। दूसरे दिन वह माँ को लेकर हवाईअड्डा गया। उसने माँ से कहा कि तुम यहीं बैठो, मैं टिकट लेकर आता हूँ। वह गया, लेकिन शाम तक वापस नहीं आया। हवाईअड्डा के कर्मचारियों ने पूछा, माताजी, किसको खोज रही हैं? माँ ने सारी घटना बताई। कर्मचारियों ने जाँच-पड़ताल की, तो वह लड़का माँ को छोड़कर विदेश जा चुका था। माँ को सारी सूचना दी। माँ बिलखकर रोने लगी। अब उसके रहने के लिए न घर था, न सम्पत्ति, खाने को कुछ भी नहीं। न दूसरा कोई सगा-सम्बन्धी था। आप सोच सकते हैं कि उस माँ ने अपना जीवन कैसे बिताया होगा। ऐसी जघन्य अपराधी सन्तान भी इस समाज में हैं, जिनके लिए कोई भी सजा कम है।

अभी कुछ दिनों पहले मुम्बई स्टेशन पर रोती हुए एक माताजी का विडियो हृदय विदीर्ण करनेवाला था। बीमार बेटे को देखने माँ दिल्ली से मुम्बई गयी थी। स्वस्थ हो जाने के बाद उसने माँ को घर से निकाल दिया। छोटे बच्चे और बड़े बच्चे; दोनों ने उन माताजी को घर से निकाल दिया। वह स्टेशन पर बैठकर रो रही थी और माँगकर खाने को विवश थी। क्या भारतीय सन्तान से ऐसे दुर्व्यवहार की अपेक्षा कोई माँ कर सकती थी? लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा हो रहा है। अखबारों के पृष्ठों में माता-पिता पर अत्याचारों की सूचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। भारत सरकार ने इतना कठोर नियम बनाया कि हर सन्तान को उसे अपनी माता-पिता की सेवा करनी ही होगी। यदि सन्तान सुसंस्कृत हो, तो माता-पिता की सेवा के लिए कानून बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

महान अवतार भगवान श्रीकृष्ण जब कंस-वध के बाद बन्दीगृह में अपने माता-पिता देवकी-वसुदेव जी से मिलते हैं, तब वे माता-पिता के प्रति पुत्र के कर्तव्य के बारे में बड़ी ही मार्मिक वाणी कहते हैं। श्रीमद्भागवत के प्रणेता श्रीव्यासजी लिखते हैं –

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा।। ५।।

– माता-पिता ही इस शरीर को जन्म देते हैं और इसका पालन-पोषण करते हैं। तभी यह शरीर धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्ष-प्राप्ति का साधन बनता है। यदि कोई व्यक्ति सौ वर्ष जीवित रहकर माता-पिता की सेवा करता रहे, तब भी वह उनके उपकार से उऋण नहीं हो सकता।

यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च।
वृत्तिं न दद्यात् प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि।। ६।।

– जो पुरुष सामर्थ्य रहते हुए भी अपने माता-पिता की शरीर और धन से सेवा नहीं करता, उसके मरने पर यमदूत उसे उसके ही शरीर का मांस खिलाते हैं।

शेष भाग पृष्ठ ५१८ पर

कनक-भवन की श्यामाजी

ब्रह्मलीन स्वामी राजेश्वरानन्द जी

अमर शान्ति आश्रम, पँचोखरा, झाँसी, उ.प्र.

श्रीअयोध्यापुरी स्थित कनक भवन में युगल सरकार श्रीसीताराम जी की सेवा में मन्दिर की ओर से एक रथ की व्यवस्था होती थी। रथ को खींचने के लिये उन दिनों एक घोड़ी थी, ऐसा लगता था मानो कोई संस्कारी जीवात्मा ही घोड़ी के रूप में प्रभु की सेवा कर रही थी। स्वभाव से सुशील यह घोड़ी सन्तों को देखकर आँखों में प्रेमाश्रु भर लेती और फिर सिर झुकाकर उनके चरणों में मानो अपना प्रणाम निवेदित करती थी। सन्त जन भी उसकी यह भक्ति देख कर अत्यन्त प्रसन्न होते। सन्तों ने उस घोड़ी का नाम 'श्यामाजी' रख दिया। सभी सन्त श्यामाजी का दर्शन कर आनन्दित होते और आपस में कहते, "भैया! यह तो कोई श्रीरामजी की परम भक्ता है, जो घोड़ी के रूप में प्रभु की सेवा कर रही है।" हम सभी को इनका दर्शन अवश्य करना चाहिए। समय बीतते देर नहीं लगती। घोड़ी बूढ़ी हो गयी। श्रीकनक भवन की सम्पूर्ण व्यवस्था टीकमगढ़ (म.प्र.) राज्य की ओर से ही होती है। जब घोड़ी का बुढ़ापा आ गया, तो कनक-भवन के मैनेजर ने सोचा कि घोड़ी को टीकमगढ़ (म.प्र.) भेज दिया जाए और वहाँ से दूसरा कोई घोड़ा मँगा लिया जाए। ऐसा सोच कर मैनेजर अयोध्या रेलवे स्टेशन पर स्टेशन मास्टर के पास गये और अपने आने का प्रयोजन बताया, तो स्टेशन मास्टर ने कहा, ठीक है, हम अलग से एक डिब्बा दे देंगे, जिसमें घोड़ी को बन्द कर दिया जायेगा और वह डिब्बा रेलगाड़ी से जोड़ दिया जायेगा। इस प्रकार घोड़ी को टीकमगढ़ के किसी समीपवर्ती रेलवे स्टेशन तक भेजा जा सकता है; परन्तु उसका किराया आपको पहले देना होगा। मैनेजर साहब मान गये और तुरन्त किराये का भुगतान कर दिया। घोड़ी को भेजने की तारीख भी निश्चित हो गयी। मैनेजर साहब कनक–भवन लौट आये। जब भेजने की तारीख के तीन दिन शेष रह गये, तो पता नहीं कैसे श्यामाजी यह जान गयीं कि मुझे श्रीअयोध्या से कहीं दूर भेजा जा रहा है। बस, श्यामाजी ने चारा चरना छोड़ दिया, पानी पीना छोड़ दिया। उनके नेत्रों से निरन्तर अश्रु-वर्षा होती रहती थी।

तीन दिवस पहिले से त्यागा, दाना पानी चारा।
आँखों से बहती थी केवल, अविरल आँसू धारा।।

श्यामा के आँखों के आँसू मानो प्रभु से यही प्रार्थना करते थे –

श्यामा कहै रघुनाथ सुनो,
करि सेवा बसी तुम्हारी रजधानी।
वृद्ध भयी एहि तें सबने,
बस औध छुड़ाइबे की हठ ठानी।।
बात सुनी जब तें तब तें,
हरि सूखत न अँखियान को पानी।
धाम में देह राजेस छुटै,
करुना करियो प्रभु सारँग–पानी।।
नाथ धाम में जुड़ा जो नाता, वह न कभी भी टूटे।
एक लालसा यही दयामय, देह अवध में छूटे।।

सेवकों ने मैनेजर से कहा कि घोड़ी की हालत खराब है, ऐसी हालत में उसे टीकमगढ़ भेजना उचित नहीं है। मैनेजर ने उत्तर दिया, "भावना के आवेग में कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।" सेवक मौन रह गये।

तीसरे दिन घोड़ी को भेजने की घड़ी आ गयी, सेवकों ने श्यामाजी को रस्सी से बाँध कर बरबस खींचना आरम्भ किया, ऐसा लग रहा था –

सेवक लै बरबस चले, श्यामा भयी अति दीन।
मनहुँ निकारत नोर तें, मीन शिकारी मीन।।
मन से भयी उदास अति, तन से भयी कमजोर।
आँसू भरि भरि देखती, कनक-भवन की ओर।।

श्यामाजी आँखों में आँसू भरकर बार-बार कनक-भवन की ओर आशा भरी दृष्टि से देखती हुई यही सोचती थी –

किसी को बुरा न भला देखना है।
हमें आपका फैसला देखना है।।

अत्यन्त करुणापूर्ण दृश्य था, देखनेवालों के भी आँखों में आँसू आ गये। सभी कह रहे थे कि हमने श्रीरामचरितमानस में पढ़ा तो था, पर आज प्रत्यक्ष देख लिया।

जासु बियोग बिकल पसु ऐसें।
प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें।।

कनक–भवन की छवि आँखों में बसाये 'सेवकों की रस्सी से बँधी हुई' बेबस बिलपती हुई श्यामा रेलवे स्टेशन पहुँची। डिब्बा पहले से तैयार था। श्यामा को बरबस डिब्बे में डाल दिया गया। अत्यन्त दुःख के कारण घोड़ी की मरणासन्न अवस्था दिखाई देने लगी। यह देखकर सेवक भी अत्यन्त दुखी हुए। रेल कर्मचारियों ने डिब्बे का फाटक बन्द कर ताला लगा दिया। सेवकों ने कनक-भवन आकर मैनेजर से कहा, ''घोड़ी की दशा अत्यन्त चिन्ताजनक है, वह रास्ते में निश्चित मर जायेगी।'' अब तो मैनेजर भी बहुत दुखी हुए और सोचने लगे, 'हे भगवान! श्यामाजी के अवध-वास छुड़ाने का पाप मुझे लगा। इससे तो घोड़ी को नहीं भेजवाना ही अच्छा होता, परन्तु अब तो मैं मजबूर हूँ, क्या करूँ?'' इधर मैनेजर अत्यन्त पश्चात्ताप करके दुखी हो रहे थे और उधर डिब्बे में श्यामाजी शव के समान शान्त पड़ी थीं। वह डिब्बा रात्रि को जानेवाली रेल में जोड़ा जाना था, किन्तु लीलामय की लीला कैसी है!

मुरदे के समान थी शान्त पड़ी,
उससे पर देह न छोड़ा गया।
तन तो मजबूर राजेश रहा,
मन को नहि भाव से मोड़ा गया।।
पशु श्यामा की प्रीति से जो था जुड़ा,
प्रभु से वह तार न तोड़ा गया।
करुणानिधि ऐसी करी करुना
नहिं डिब्बा ही रेल में जोड़ा गया।।

रात्रि को रेल आयी और चली गयी। रेल कर्मचारी जिसमें श्यामाजी बन्द थीं, वह डिब्बा ही रेल में जोड़ना भूल गये। सबेरे स्टेशन मास्टर ने देखा कि डिब्बा तो वहीं खड़ा है। तब वे बहुत घबड़ाये, क्योंकि इतनी बड़ी गलती हो गयी थी, जिसके कारण नौकरी पर भी आँच आ सकती थी। तुरन्त कर्मचारियों को बुलाकर डाँटा, फिर डिब्बे का ताला खुलवाया गया, तो देखा श्यामाजी डिब्बे में मरी पड़ी हैं। अब तो स्टेशन मास्टर को बहुत दुःख हुआ। शीघ्र ही एक पत्र लिखकर एक आदमी के हाथों कनक–भवन में मैनेजर के पास भेजवा दिया। पत्र में लिखा था –

क्षमा करें हुई भूल हमसे, किसको दोष लगायें।
श्यामा मरी पड़ी डिब्बे में, चाहें तो ले जायें।।

पत्र पढ़कर मैनेजर दुखी तो हुए, पर प्रसन्न भी हुए। सोचने लगे, ''चलो, अच्छा हुआ, श्यामाजी का शरीर तो श्रीअवध में छूटा, अब उनकी अन्त्येष्टि भी श्रीसरजू के किनारे किसी उपयुक्त स्थान पर हो जायेगी।'' ऐसा विचार कर वे कुछ सेवकों के साथ रेलवे स्टेशन पहुँचे। श्यामाजी को डिब्बे से बाहर निकाला गया। शरीर अकड़ गया था, अन्त्येष्टि की तैयारियाँ हो रही थीं, तभी श्रीकनक–भवन के ही एक सेवक गुरुदीन जमादार को पता नहीं क्या प्रभु-प्रेरणा प्राप्त हुई, वह घोड़ी के कान के पास मुँह ले जाकर बोला –

श्यामाजी उठ बैठिए, अब क्यों पड़ीं उदास।
राम कृपा से आपको, मिल्यो अवध को वास।।

तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी –

श्यामा के श्रवनन परे, जमादार के बैन।
फिर से जीवित हो गयीं, खोल दिये दोउ नैन।।

श्यामा के शरीर में फिर से प्राण आ गये, उसने आँखें खोल दी। श्रीअवध की भूमि का दर्शन करके उसकी आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे, अपनी चिर परिचित गलियों में भागते हुए, वह सीधे कनक-भवन जा पहुँची और वहाँ द्वार की सीढ़ियों पर सिर रखकर प्रेम के आँसू बहाने लगी। यह दृश्य देखनेवाले सभी भाग्यशाली भक्तों के नेत्र सजल थे और सभी के मुँह से एक ही आवाज निकल रही थी –

राम सदा सेवक रुचि राखी।
वेद पुरान सन्त सुर साखी।।

अब तो श्यामाजी अवध में आनन्द से निवास करने लगीं। सभी सन्त नित्य प्रति दर्शन को आते और कहते कि प्रभु-प्रेम का पाठ पढ़ना हो, तो इनसे पढ़ो। इस प्रकार श्यामाजी पाँच वर्ष और जीवित रहीं। पाँच वर्ष बाद जब शरीर छोड़ा, तो अनेक सन्त उनकी अन्तिम यात्रा में शामिल हुए और आँसू बहाते हुए सबने यही कहा –

धनि धनि श्यामा पशु होकर भी, प्रीत राम से जोड़ी।
जीवन भर सेवा में रहकर, देह अवध में छोड़ी।।

बोलिए भक्त-वत्सल भगवान की जय ! ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३५)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

वेदज्ञ ब्राह्मण पण्डित

काशी के प्रमदादास बाबू के पत्र से ज्ञात हुआ कि अयोध्या के पास के किसी गाँव में मेरे मन के अनुरूप एक वेदज्ञ पण्डित निवास करते हैं। वे निरीह स्वभाव के व्यक्ति हैं और अपनी विद्वत्ता का परिचय देने के इच्छुक नहीं हैं। यदि वे बंगाल में आकर वैदिक शिक्षा देना आरम्भ करें, तो उनका नाम चिर-स्मरणीय हो जाएगा, इसी तरह की बहुत-सी बातें लिखने के बाद उन्होंने सूचित किया था कि वे मात्र चालीस रुपये मासिक और दैनिक सीधा मिलने पर आने को राजी हैं। यह सुनकर रामकृष्णानन्द को जिस अवस्था में ठाकुर के लिये चार पैसे की मिश्री तक जुटाने में कठिनाई होती थी, पण्डितजी के लिए चाहे जैसे भी हो, चालीस रुपये मासिक की व्यवस्था करने को राजी हो गये।

स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज

ठीक उसी समय स्वामीजी कोलम्बो आ पहुँचे और इसलिए हमलोगों का यह संकल्प रूपायित नहीं हो सका। परन्तु अब ऐसा लगता है कि स्वामीजी आकर यदि देखते कि हम लोगों ने एक वेदज्ञ पण्डित को मठ में लाकर वेदाध्ययन की व्यवस्था की है, तो उनके आनन्द की सीमा न रहती। परन्तु स्वामीजी के पहली बार अमेरिका से लौटने का संवाद पाकर हमारी ऐसी अवस्था हो गयी थी कि हमारे पास स्वामीजी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सोचने का समय ही नहीं था।

स्वामीजी का कलकत्ता-आगमन

काफी सोच-विचार के बाद कुछ विशिष्ट सज्जनों को लेकर एक स्वागत-समिति का गठन किया गया। स्वामीजी को बजबज से कलकत्ते तक एक विशेष ट्रेन से लाने की व्यवस्था हुई।

रामकृष्णानन्द और मैं मठ में ही रहे। हमने उनके स्वागत हेतु केले के वृक्ष गाड़ दिये, आम्रपल्लव के साथ पूर्ण कुम्भ रख दिये और साथ ही एक छोटा-मोटा तोरण भी बना लिया।

विभिन्न प्रकार के असंख्य लोग उन्हें देखने तथा उनका स्वागत करने सियालदह स्टेशन पर गये हुए थे। स्वामीजी जब बाहर आकर गाड़ी में बैठे, तो कॉलेज के छात्रों ने उसके घोड़े खोल दिये और स्वयं ही उसे खींचते हुए मिर्जापुर स्ट्रीट में स्थित रिपन कॉलेज तक ले आये। उस समय इतनी भीड़ एकत्र हो गयी थी कि कॉलेज के भीतर ही लोगों के पाँवों से दबकर एक व्यक्ति की मरणासन्न अवस्था हो गयी थी। रिपन कॉलेज में प्रविष्ट होकर स्वामीजी ने कुछ बोलने का प्रयास किया, परन्तु अत्यधिक भीड़ तथा धक्कामुक्की के कारण वे बोल नहीं सके।

रिपन कॉलेज से निकलकर स्वामीजी बागबाजार के नेबूबागान में गये और वहाँ श्रीयुत नन्दलाल बसु के आलीशान भवन में ठहरे। वहीं भोजन आदि करने के बाद, अपराह्न के समय एक घोड़ेगाड़ी में सवार होकर वे आलमबाजार मठ आये। हम दोनों बड़े प्रेम से उन्हें मठ के भीतर ले गये।

स्वामीजी के साथ, लन्दन से नार्मन-वंश के कप्तान सेवियर, मदर सेवियर, मिस मुलर और विख्यात आशुलिपिक (shorthand-writer) गुडविन आदि; कोलम्बो से बौद्ध हैरिसन साहब और मद्रास से 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका के प्रथम सम्पादक आलासिंगा पेरुमल, जी.जी. और किडी भी कलकत्ते आये थे। स्वागत-समिति ने उन सभी के लिये, काशीपुर में गोपाल शील के उद्यान-भवन में ठहरने की व्यवस्था की थी।

उस उद्यान में ही विभिन्न देशों तथा विभिन्न श्रेणियों के लोग स्वामीजी से मिलने आया करते थे। स्वामीजी उस उद्यान-भवन से प्राय: प्रतिदिन आलमबाजार मठ में आते और हम लोगों के साथ रात बिताने के बाद सबेरे पुन: उसी उद्यान में चले जाते।

मठ में आते ही स्वामीजी हमलोगों को स्वास्थ्य-रक्षा विषयक विविध उपदेश देने लगे। उन्होंने जब पूछा कि जल को उबालकर उसे फिल्टर करके पीया जाता है या नहीं, तो हम लोगों ने अपना फिल्टर दिखा दिया। वे बोले – बाकी चाहे जो भी करो, परन्तु पेय जल को इस प्रकार शोधित करके पीना कदापि मत भूलना।

वे सभी को 'डेलसर्ट' नामक एक तरह का सहज व्यायाम सिखाने लगे। यह एक तरह का अंग-संचालन मात्र है। इसमें शरीर को टेढ़ा करके सामने और पीछे की ओर झुकाया जाता है; दाहिने तथा बाएँ हाथ को नीचे ले जाकर भूमि से लगाया जाता है; इसी प्रकार दोनों पाँवों तथा सिर को चारों ओर घुमाया जाता है। बिना कोई जोर लगाये, इस प्रकार कम-से-कम आधा घण्टा अंग-संचालन करने पर विशेष लाभ होता है। मठ में उन दिनों यह 'डेलसर्ट' नामक व्यायाम बड़ा लोकप्रिय हो गया था।

यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है। लगातार करीब तीन वर्ष पाश्चात्य देशों में रहकर, निरन्तर अंग्रेजी भाषा में व्याख्यान तथा चर्चाएँ करने के बाद भी जब वे स्वदेश लौटे, तो उनके होठों से सदैव 'गीत-गोविन्द' के गीत निकलते रहते थे। 'नाम-समेतं कृत-संकेतं वादयते मृदु वेणुम्' आदि पद मृदु-मधुर सुर में गुनगुनाते हुए स्वामीजी बारम्बार भाव-विभोर हो जाया करते थे।

स्वामीजी के अमेरिका से लौटने के कुछ दिन पूर्व से ही एक गायक, पड़ोस के गाँव में अपने एक मित्र के घर में रहकर, प्रतिदिन अपराह्न के समय मठ में आकर भजन सुनाया करते थे। उनका गायन सुनने के लिये मठ में काफी लोग आते थे। वे एक बड़े मजलिसी गायक थे और एक छोटा हार्मोनियम तथा एक छोटी-सी डिब्बी में पान के बीड़े लेकर गाने बैठते। वे एक के बाद एक, लगातार दो-तीन घण्टे गा लेते थे। उनके पास असंख्य गानों का भण्डार था। नीलकण्ठ द्वारा रचित प्राय: सभी गाने उन्हें कण्ठस्थ थे।

स्वामीजी के लौटने के बाद, जब उन्होंने कुछ दिन मठ में आकर भजन गाये, तो उसके बाद हम लोग समझ गये कि वे स्वामीजी को गीत सुनाकर उन्हें खुश करने की आशा पाले हुए हैं। स्वामीजी गोपाललाल शील के उद्यान से कभी मठ में आते, तो कभी वहीं लौट जाते; उनके निवास में स्थिरता न थी। एक दिन शाम के समय, स्वामीजी की मठ में उपस्थिति से अवगत होने के बाद उन्होंने मठ के बाहरी कमरे में अपने गाने की महफिल जमा ली। स्वामीजी उस समय मकान के भीतरी हिस्से में थे। मैंने सोचा था कि उस दिन वे अवश्य स्वयं ही बाहर आकर गाना सुनने बैठेंगे। उस समय मैं उनके पास ही था। देखा, उस ओर उनका जरा-सा भी ध्यान नहीं है। उनका वह उपेक्षा का भाव देखकर मैं बोला, "भाई, ये सज्जन तुम्हें गाना सुनाने के लिये बहुत दिनों से हर रोज मठ में आकर दो-तीन घण्टे गाकर महफिल जगाये रखते हैं। हम लोग भी उनकी बड़ी देखभाल करते हैं। जरा चलो न! तुम्हारे एक बार जाकर न बैठने पर ये ब्राह्मण बड़े ही निराश होंगे।" यह सुनकर स्वामीजी बोले, "सूर्पणखा का यह रुदन सुनकर क्या होगा? जो गीत मैं सुनकर आया हूँ, वैसे गीत क्या यहाँ कोई गा सकता है?"

मैंने कहा, "यह क्या! तुम्हीं तो कहते थे कि भारतवर्ष में कण्ठ-संगीत (vocal music) और पाश्चात्य देशों में वाद्य-संगीत (instrumental music) का उत्कर्ष सम्पन्न हुआ है?" स्वामीजी गम्भीरतापूर्वक बोले, "उन देशों में जाकर मेरी वह धारणा बदल गयी है। Human life is progressive (मानव-जीवन उन्नतिशील है)। हमारे यहाँ सा-रे-गा-म-प-ध-नी – इन सप्त स्वरों के मात्र तीन ग्राम ही प्रचलित हैं। उन देशों में इसके अतिरिक्त और भी चार ग्राम हैं।" उन चार ग्रामों के नाम स्वामीजी ने उसी देश की भाषा में मुझे बताये थे; वे अब मुझे याद नहीं हैं। जब वे ये सब बातें कह रहे थे, उसी दौरान बाहर के संगीत की महफिल बन्द हो चुकी थी। इसके बाद, जहाँ तक मुझे याद आता है, वे सज्जन दुबारा मठ में नहीं आये। कदाचित् उन्हें आशा थी कि वे स्वामीजी को गीत सुनाकर अपने लिये किसी राजा-महाराजा के दरबार में कोई नौकरी जुटा लेंगे।

तीनों मद्रासी भक्त तथा गुडविन प्राय: मठ में ही निवास करते थे। मद्रासी लोग मठ में अपना भोजन अलग पकाते थे। मुझे उन्हीं लोगों के पास, उनका अति प्रिय 'रसम्' पहली बार चखने को मिला। गुडविन तथा किडी हमारे साथ ही खाते थे। गुडविन किसी बच्चे के समान हमेशा नाचते-गाते रहते। "शंकर शिव बम बम भोला" – यह भजन उनके मुख

से बड़ा मधुर सुनाई देता था। कभी-कभी वे मुझे पकड़कर बॉल-नृत्य करके दिखाते थे।

सेवियर दम्पती और मिस मुलर का, सम्भवत: आलमबाजार मठ में कभी आगमन नहीं हुआ था। एक दिन करीब दस बजे मैंने देखा कि श्रीलंका के हैरिसन साहब एक छकड़ा-गाड़ी से नीचे उतर रहे हैं। हम लोग हड़बड़ा कर उनके लिये एक कुर्सी लाने जा रहे थे। स्वामीजी उस समय मकान के भीतरी बरामदे में टहल रहे थे; उनके पूछते ही हमने उन्हें हैरिसन साहब के बारे में बता दिया। सुनकर वे बोले, "गुरु के दरबार में यदि वह कुर्सी पर न बैठें, तो उसका कल्याण होगा।" इतना कहने के बाद उस कमरे में जो दो-तीन कुर्सियाँ थीं, उन्हें उन्होंने एक अन्य कमरे में घुसाकर रख दिया। इसके बाद उन्होंने वहाँ टहलते हुए ही उनके साथ एक घण्टे से भी अधिक समय बातचीत करने के बाद उन्हें विदा किया।

आलमबाजार मठ में स्वामीजी दो खिड़कियों के बीच – हैमक (hammock) बाँधकर उसमें झूलते हुए पुस्तकें पढ़ा करते थे। उनके मठ में आते ही मैंने उनसे कहा, 'तुम्हारे सारे व्याख्यान श्रुति-स्मृतियों के प्रमाण पर आधारित हैं। तुम्हारे मुख से कितनी ही बार कितने ही प्रकार के मतवाद और कितनी ही बार परस्पर-विरोधी युक्तियाँ सुनी हैं। परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि अपने व्याख्यान के दौरान तुम एक भिन्न व्यक्ति प्रतीत होते हो। परन्तु भाई, एक व्याख्यान में तुमने एक बड़ी श्रुतिविरुद्ध बात कह डाली है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद वह फिर पशु के रूप में जन्म नहीं लेता। एक अन्य स्थान पर तुमने कहा है – मनुष्य की ऊर्ध्वगति तथा अधोगति दोनों ही होती है। मेरी इस शंका का समाधान अब तुम्हें ही करना होगा।'

यह सुनकर वे बोले, 'तूने ठीक ही पकड़ा है। मेरे स्टेनोग्राफर (द्रुत-लेखक) ने ही लिखकर वह व्याख्यान मुद्रित कराया था और यह उसी का कारनामा है। वह आदमी मेरी सारी बातें मानता था, परन्तु यह मानने को तैयार न था कि मनुष्य मरकर फिर पशु भी हो सकता है। उस व्याख्यान के छप जाने के बाद मैंने देखा कि उसने गलत छाप दिया है।' बाद में रामकृष्णानन्द को बुलाकर उनके साथ मेरी जो बातें हुई थीं, उन्हें बताते ही दोनों जन खूब हँसने लगे। मैंने भी निश्चिन्तता की लम्बी साँस ली।

अभिनन्दन-समारोह

स्वागत-समिति की ओर से दरभंगा के महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह तथा उत्तरपाड़ा के राजा प्यारीमोहन मुखोपाध्याय को सभापति बनाने का प्रयास किया गया, परन्तु एक विशेष दल के अनुरोध तथा आग्रह पर उन लोगों ने सभापति बनने से मना कर दिया। आखिरकार शोभाबाजार राजभवन के राजा विनयकृष्ण देव ने सभा की अध्यक्षता करने की स्वीकृति दी। यह समारोह शोभाबाजार के महाराजा सर राधाकान्त देव के विशाल प्रांगण में सम्पन्न हुआ। इतना बड़ा राजभवन, लोगों की भीड़ से पूरी तौर से भर गया था।

सभा में स्वामीजी के आने के पूर्व ही मैं काशीपुर में स्थित गोपाल लाल शील के उद्यान में जाकर मदर सेवियर तथा कप्तान सेवियर को राजभवन में ले आया। मंच पर स्वामीजी के पाश्चात्य शिष्य तथा शिष्याएँ और राजा प्यारीमोहन मुखोपाध्याय आदि कई गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। हम सभी मठवासी स्वामीजी के पीछे खड़े थे। अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने जिस विनम्रता के साथ व्याख्यान दिया था, वह विशेष उल्लेखनीय है। उसे सुनकर सारे श्रोता मंत्रमुग्ध हो गये थे।

इसके बाद कलकत्ते के स्टार थियेटर में स्वामीजी का व्याख्यान हुआ। उनके इस व्याख्यान के साथ – उनकी मद्रास की वक्तृता My Plan of Campaign (मेरी समर-नीति) और लाहौर के वेदान्त-विषयक प्रवचन की तुलना की जा सकती है। इस तरह का सुदीर्घ तथा प्रज्वलन्त व्याख्यान उन्होंने बंगाल में अन्यत्र कहीं भी नहीं दिया था।

इस स्थान पर मैं एक अद्भुत तथा लज्जास्पद सत्य घटना का उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता। सुना है कि समारोह के बाद ही, 'स्वागत-समिति' ने स्वामीजी की अभ्यर्थना के मद में उनके पास कोई तीन सौ रुपयों का एक बिल भेजा था।

स्टार थियेटर में व्याख्यान

उस दिन व्याख्यान के मंच पर सुप्रसिद्ध वक्ता सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय के अतिरिक्त डॉक्टर महेन्द्रलाल सरकार, श्रीयुत आनन्दमोहन बोस, डॉ. जगदीशचन्द्र बोस आदि कलकत्ते के अनेक गणमान्य लोग उपस्थित थे।

शेष भाग पृष्ठ ४९७ पर

बहन का शाप भी वरदान बनता है : भाई-दूज का त्योहार

डॉ. सुनयना मिश्रा

सहा. प्राध्यापिका, शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

भारतीय लोक-संस्कृति में दो त्योहार हैं, जो भाई-बहन के प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं। पहला रक्षाबन्धन और दूसरा भाई-दूज। भाई-दूज त्योहार कार्तिक शुक्ल द्वितीया को मनाया जाता है। यह त्योहार भाई-बहन के प्रेम का प्रतीक है। यह एक ऐसा त्योहार है, जिस दिन बहनें अपने भाई को दीर्घायु और अमरत्व का वरदान तो देती ही हैं, किन्तु श्राप देकर भी उनके जीवन की रक्षा करती हैं। यह भाई-बहनों के अटूट प्यार का त्यौहार है। इस दिन ही यमुना के घर उनके भाई आए थे, तब से इस दिन का अधिक महत्त्व है। भाई दूज के दिन चित्रगुप्त का पूजन भी होता है। बहन अपने भाई की दीर्घायु के लिए यह पर्व मनाती है।

उत्तर प्रदेश और बिहार की लोक-संस्कृति में गोधन-पूजा और भाई-दूज का पर्व एक साथ कार्तिक शुक्ल द्वितीया को ही मनाया जाता है। इसके पहले खरमास रहता है। इसमें सभी शुभ कार्य बन्द रहते हैं। गोधन बाबा के उठने के बाद यानि गोधन-पूजा के बाद दूसरे दिन से ही शुभ मुहूर्त आरम्भ हो जाता है। नये सभी मांगलिक कार्य होने लगते हैं। गोधन-पूजा में गाँव की लड़कियाँ-महिलाएँ मिलकर मानवाकार गोबर की सोई हुई प्रतिमा बनाती हैं। विभिन्न सामग्रियों से पूजा करने के बाद भाइयों को श्राप देती हैं। उसके बाद घण्टों एक साथ बैठकर गीत गाती हैं। गीत गाने के बाद गोधन-प्रतिमा को पहरूआ से सब मिलकर कूटती हैं। उसके बाद भाइयों को श्रापमुक्त कर आशीर्वाद देती हैं। सैकड़ों वर्षों से परम्परागत रूप से प्राप्त उस समय जो गीत गाती हैं, उनमें से कुछ गीतों का उल्लेख कर रहे हैं, जिसे उत्तर प्रदेश, देवरिया की श्रीमती सुनयना दूबे ने भेजा है। सभी लड़कियाँ गोधन बाबा को चारों ओर से घेरकर गाती हैं –

उठहु ए देव ऊठहु हे, सुतले भइले छव मास।
रउरा बिनु बारी ना बिअहिले हे,
बिअहल ससुरा नहिं जास।। उठहु हे देव ...

अर्थात् ''हे देव उठिये, आपको सोए छह मास हो गये। आपके बिना लड़कियाँ कुँआरी हैं, उनका विवाह नहीं कर पा रहे हैं और जिनका विवाह हो गया है, वे अपने ससुराल नहीं जा पा रही हैं।'' ऐसे बहुत-से गीतों के गाने के बाद सभी मिलकर गोधन बाबा को पहरुआ से कूटती हैं और उसके साथ ही फूट पड़ता है सबकी हँसी का फव्वारा। उसके बाद सभी बहनें अपने-अपने भाइयों को पहले श्राप से मुक्त करती हैं। भाई और भाभी को बहुत आशीर्वाद देती हैं। बहनों द्वारा भाई को दिए हुए आशीर्वाद के गीत भी जन-मानस में प्रचलित हैं, जिसे सभी बहनें मिलकर बड़ी प्रसन्नता से गाती हैं। श्रीमती सुनयना दूबे द्वारा प्रेषित गीत है –

गोधन बाबा अइले पहुनवाँ, का ले बइठे के दीं।
चन्दन काठ के पीढ़इया, उहे बइठे के दीं।।
गोधन बाबा चलले अहेरिया,
उनकर दीदी देली आसीस हो ना।
जीअहु हो मोरे भैया,
जीअ भइया लाख बरीस हो ना।
भैया के बाढ़ो सिर पगिया,
भउजी के बाढ़ो सिर सिन्दुर हो ना।।

भावार्थ ''गोधन बाबा हमारे अतिथि आए हैं। उनका कैसे स्वागत करें, किस पर बैठायें। उन्हें चन्दन-निर्मित पीढ़ा बैठने को दो। गोधन बाबा जा रहे हैं, तो उनकी दीदी उन्हें आशीर्वाद दे रही हैं कि हे भैया आप लाख वर्ष तक जीवित रहें, आपके सिर पर पगड़ी हो, यानि आप सम्मानित समृद्धिशाली बनें और हमारी भाभी के सिर पर सदा सिन्दूर रहे, उनका सदा सुहाग बना रहे।'' इस प्रकार बहनें अपने भाइयों को अभय वरदान देती हैं। इसलिये इस त्योहार का अपना एक विशेष महत्त्व है।

भाई-दूज की पूजन-सामग्री और पूजा की विधि निम्नलिखित है –

पूजन सामग्री : ऐपन (गीले चावल पीसे हुए) दूध, फूल, दूब, हल्दी, कुमकुम, सिन्दूर, अगरबत्ती, माचिस, पान, साबूत सुपारी, चावल, कलश, गौर, दिया, बेर की डाली, मूसल रूई की पूनी, (जितने भाई हों, उतनी लेते हैं।) पानी, घी, शक्कर, धूप, बत्ती, कपूर, मिट्टी का दिया।

विधि : दूज रखने के लिए जमीन लीप कर साफ कर लें। ऐपन में जरा-सी हल्दी डालकर एक घेरा बनायें। उसमें सात भाई एवं एक बहन बनायें। चँदा, सूरज, साँप, बिच्छू, गंगा, यमुना, शंकर, पार्वती, सातिया आदि बनायें। महावर, बिंदी आदि लगाकर, नये वस्त्र पहनकर बीच में कलश रख लें। दीपक जलायें। पान के पत्ते पर गौर (गोरी-गणेष) रखें। पूर्व की ओर मुँह करके बैठकर पूजा प्रारम्भ करें। पहले हल्दी व चूना या कुमकुम से अपना बाँया हाथ रंगें। एपन में बीच की अँगुली न रखें। पूरे हाथ में लाल लाइनें बना लें। पूजन करके सब कुछ चढ़ाकर हाथ में चावल लेकर कथा-श्रवण करें या पढ़ें। रोचना की एक गोली बनाकर पान के ऊपर रख दें व साबुत चावल वहीं रखें। कहानियों के उपरान्त आरती करें। ऐपन से मूसल में भी पाँच लाइनें बना लेते हैं। दूज से थोड़ा हटकर एक बड़ा पुतला ऐपन से बनायें, उसे चुगल कहते हैं। उसकी छाती पर एक कोरा दीया उलट कर रख दें व बेर की डाल उसमें दबाकर मूसल को उसी आग में डाल दें। जब पूरी पूजा समाप्त हो जाये, तब उसका पूजन करें। चुगल को लंबा तिलक लगाकर मुँह में घी, शक्कर खिला दें मूसल को उलटा कर दिये पर रखें व रंगा हाथ लगाकर घुमावें व गीत गावें –
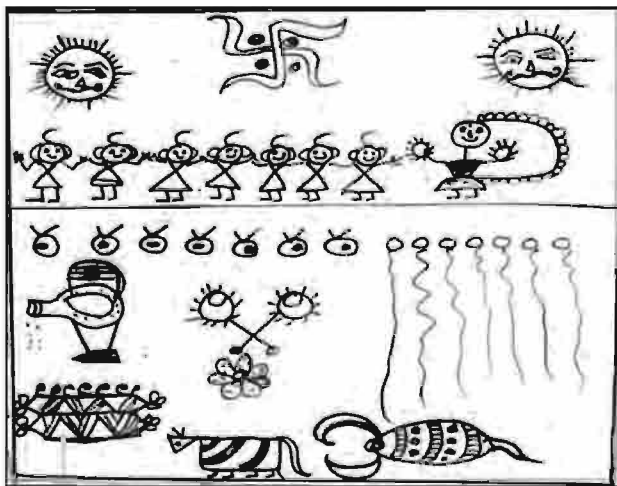
भाई-दूज का ऐपन

गीत

अरे-अरे करिया तीतर बटिया
जेहि बाट आवहिं भैया
रात तो आवहिं धन सग
जो बैरी मेरे भैया का सालै
ऊपर भवाओं चाकरी।

रंगे हाथों से मूसल पकड़े रहें और सात बार सब अपने-अपने भाइयों का नाम लेकर गायें। अन्त में सात बार कूट दें, दियाली फूट जावेगी। मूसल आड़ा डालकर बायाँ पैर उस पर रखकर गेर काँटे की पत्ती तोड़कर डाल दें और भाई की रक्षा हेतु कहें – ''भैया गये हैं पत्तियाँ तोड़न, कहँवा न लागै।'' सोहाग लेकर अपनी पूनी (बत्ती) उठाकर थाली में रख लें। कुमकुम की गोली और साबुत चावल रखा है, उसे उठा लें। पहले दरवाजे में बिन्दी लगाकर पूजन करें, फिर भाई को पीढ़ा या चौकी पर बैठाकर टीका लगायें। टीका रंगे हुए हाथ से ही लगायें। भाई दूज के दिन सवा पहर तक बहन के बायें हाथ के अँगूठे में अमृत रहता है। इससे टीका लगाने से भाई की आयु बढ़ती है और भाई नीरोग रहता है। भाई की आरती उतारें, मिठाई और श्रीफल उसके हाथ में दें। इसके बाद भाई यथाशक्ति द्रव्य बहन को देकर पैर छूकर आशीर्वाद लें। जो रोचना की गोली पूजा में रखी जाती है, उसे पानी में डालकर गीला कर लें। वे साबुत चावल रख लें, उसे भाई के माथे पर लगावें और आशीर्वाद रूप में अक्षत भाई के ऊपर छिड़कें, आरती उतारें और पैर छूने पर आशीर्वाद दें।

भाई-दूज के सम्बन्ध में बहुत-सी लोक-कथाएँ प्रचलित हैं। उनमें से कुछ कथाएँ यहाँ उद्धृत हैं –

भाई-दूज की कथा (१)

भगवान सूर्यनारायण की पत्नी का नाम छाया था। सूर्य की पुत्री का नाम यमुना और पुत्र का नाम यमराज था। यमुना हमेशा अपने भाई को बुलाती थी, परन्तु उन्हें बहन के घर जाने के लिये समय ही नहीं मिलता था। अत: उसके यहाँ नहीं जा पाते थे। यमराज ने सोचा, मैं तो लोगों के प्राणों को हरनेवाला हूँ, इसलिये मुझे कोई भी अपने घर नहीं बुलाना चाहता है। बहिन इतने प्रेम और सद्भावना से मुझे बुला रही है, उसका मुझे पालन करना चाहिये। यही मेरा धर्म है। कार्तिक शुक्ल की दूज के दिन यमराज यमुना के घर

गये। वे बहिन के घर जाने की खुशी में नरक के सारे लोगों को मुक्ति देकर यमुना के घर आ गए। यमुना अपने भाई को देखकर बहुत खुश हुई और बड़े प्रेम से भाई का खूब स्वागत-सत्कार किया। यमराज बहुत प्रसन्न हुए और बहन को वरदान माँगने को कहा। यमुना ने कहा, ''यदि आप प्रसन्न हैं, तो हर वर्ष दूज के दिन मेरे घर आकर भोजन करें और मेरी जैसी जो बहनें अपने भाई का उस दिन आदर-सत्कार करेंगी, टीका लगाकर प्रेम से भोजन कराएँगी, उन्हें आपका (यमराज का) भय नहीं रहेगा।'' यमराज अमूल्य वस्तु देकर 'तथास्तु' बोलकर अपने लोक चले गये। इसी दिन से यह पर्व मनाया जाने लगा। जो बहन, यमुना में स्नान कर भाई को भोजन कराती है, भाई को टीका लगाती है और भाई अपनी बहन को कुछ द्रव्यादि उपहार देता है, तो उसे यम-यातना नहीं भोगनी पड़ती है।

इस पर्व का बहुत महत्त्व है। चन्द्रदर्शन इस दिन जरूर करें। कहीं-कहीं स्त्रियाँ दिन भर व्रत रखकर शाम को चन्द्रोदय होने पर भाई को टीका लगाती हैं और बाद में स्वयं भोजन करती हैं। भाई-दूज के दिन यमुना-स्नान साथ में कर लें, तो यमराज के वरदान के अनुसार दोनों बहन-भाई को यम-यातना भी नहीं सहनी पड़ती है। जहाँ तक हो सके, यम द्वितीया के दिन यमुना में बहन-भाई स्नान करें और बहन वहीं पर भाई को टीका करे और बहन से भाई आशीर्वाद ले।

भाई-दूज की कथा (२)

एक घर में सात भाई थे। उन सबकी एक ही बहन थी, इसलिए उसे सब 'सतनियाँ' के नाम से पुकारते थे। भाई अपनी बहन को बहुत प्रेम करते थे। उसे कुछ भी काम नहीं करने देते थे। एक झूला डाल दिया था। उसी में बैठे-बैठे वह दूध पीती रहती थी। यह बात भाभियों को बहुत बुरी लगती थी, परन्तु भाइयों के सामने न कुछ कर सकती थीं और न ही कुछ कह सकती थीं।

एक बार सब भाई व्यापार करने बाहर चले गये। अब भाभियों को मौका मिल गया। उन्होंने सतनियाँ को धान दिया कि बिना ओखली मूसल के धान कूटकर लाओ, किन्तु ध्यान रखना एक भी चावल टूटने न पावे। सतनियाँ जंगल में रोने लगी। चिड़ियों से उसका रोना नहीं देखा गया। उन्होंने चावल साफ करके रख दिये। दूसरे दिन भाभियों ने कहा कि बिना बाँधे लकड़ियों का गट्ठर लाकर दो। वह जंगल में लकड़ी चुनती थी, पर सिर पर उठाते ही गिर जाती थी। वह खूब रोने लगी। इतने में नाग देवता आये। जब उन्हें इस लड़की के रोने का कारण पता लगा, तो वे गट्ठे में लिपट गये। सतनियाँ लकड़ी लाई और पटकते ही नाग महाराज चले गये। तीसरे दिन भाभियों ने चलनी दी, इसमें पानी भर कर लाओ। बेचारी नदी के तीर पर बैठकर रोने लगी। वह जैसे ही पानी भरती, पानी बह जाता। रेत को दया आई। वह चलनी में भर गई। सतनियाँ उसमें पानी भरकर ले आई। अब भाभियों ने सोचा, यह तो सारे काम कर देती है।

एक दिन उसे भाभियों ने काला कम्बल देकर उसे धोकर उजला करके लाने को कहा। सतनियाँ नदी पर कम्बल पटक-पटक कर धोती रही, पर वह सफेद ही नहीं होता। वह जोर-जोर से रोने लगी। उस दिन भाईदूज का दिन था। भाइयों ने सोचा, घर जाकर बहन से टीका लगवायेंगे। रास्ते में रोने की आवाज सुनकर छोटा भाई बोला, ''भैया, कहीं से सतनियाँ के रोने की आवाज आ रही है।'' सबने उसे बहुत डाँटा और कहा, ''सतनियाँ झूले में बैठी दूध पी रही होगी या जंगल में नदी पर रोयेगी?'' सब भाई तो सतनियाँ से मिलने घर की ओर चल दिये। छोटे का मन नहीं माना। वह नदी पर आया, देखा तो सतनियाँ काला कम्बल धोती हुई रो रही थी। भाई के पूछने पर सतनियाँ ने सब हाल बता दिया। यह सब सुनकर भाई को बहुत दुःख हुआ। वह बहन को साथ लेकर घर की ओर चल दिया। इधर भाइयों के आते ही सारी भाभियाँ घबराकर इधर-उधर दौड़ने लगीं। पूछने पर कहने लगीं – ''अभी तो सतनियाँ झूले पर बैठकर दूध पी रही थी। अभी-अभी कहीं चली गई।'' भाई भी परेशान हो गये। इतने में छोटा भाई सतनियाँ को लेकर आ गया और हाथ में बेर की कँटीली छड़ी लेकर आया। जैसे ही भाइयों ने सतनियाँ को देखा वे खुश हो गये। पर जब उन्होंने उसका दुख सुना, उन्हें बहुत क्रोध आया और उन्होंने अपनी-अपनी पत्नी को मार-मार कर बाहर निकाल दिया। सतनियाँ ने जाकर भाईयों को समझाया कि घर नहीं उजाड़ा जाता है। सभी भाई इन लोगों की गलती को क्षमा कर दें। सभी बहन का कहना मान गए। हँसी-खुशी सतनियाँ ने भाई-दूज की पूजा की और भाईयों को टीका लगाया – जैसे उनके दिन बहुरे, वैसे ही सबके दिन बहुरें – अर्थात् जैसे उनके दिन वापस आए, वैसे ही सबके खुशी के दिन वापस मिलें।''

भाई-दूज की कथा (३)

एक ब्राह्मण थे, उनकी छह बेटियाँ और एक बेटा था। इन बच्चों की माँ सौतेली थी। लड़के और लड़कियों की शादी हो गई थी। हमेशा माँ पूछती कि लड़के की जान किसमें है? परन्तु उसे किसी ने नहीं बताया। एक दिन बहू से पूछा, बहू ने हठ कर अपने पति से पूछकर सास को बता दिया कि बगीचे में जो चन्दन का पेड़ है, उसमें लड़के की जान है। उस दिन भाई दूज का दिन था। सब बहनें अपने भाई को टीका लगाने आई थीं। इधर माँ ने जाकर पेड़ में आग लगा दी। पेड़ सुलगने लगा। इधर लड़का बेहोश होने लगा। लड़कियों ने अपने भाई की हालत देखकर जल्दी से माथे पर तिलक लगा दिया। बहन के अँगूठे में अमृत रहता है, उनके तिलक लगाने से उसकी उम्र बढ़ गई। बहनों ने जल्दी से चन्दन के पेड़ की आग दूध व दही से बुझा दी। जैसे ही आग बुझी, भाई को होश आ गया। बहनों ने अपने भाई को मिठाई और नारियल दिया। भाई ने बहनों को यथाशक्ति द्रव्य देकर आशीर्वाद ग्रहण किया। बहनें टीका करके अपने-अपने घर चली गईं।

भाई-दूज पर टीका लगाती हुई बहन

बहनें आज के दिन भाइयों को टीका लगाती हैं, तो उनकी आयु बढ़ती है। इसलिए हर भाई अपनी बहन से आज के दिन टीका अवश्य लगवाये। जैसे उनके दिन बहुरे वैसे सबके दिन बहुरें।

भाई-दूज की कथा (४)

एक साले-बहनोई रहते थे। किसी बात पर दोनों में अनबन हो गई। बहनोई ने सोचा कि इसकी बहन हर भाई-दूज को इसको टीका लगाती है। इस वर्ष भी लगायेगी। बहन की हाथ के अँगूठे में अमृत रहता है, इसलिए बहनोई नहीं चाहता था कि उसकी पत्नी अपने भाई को टीका लगाकर अपने भाई को अमर कर दे। अत: भाई दूज के दिन वह सुबह से ही दरवाजे पर बैठ गया कि आज टीका लगाने उसका साला अन्दर न आ सके। बहन दुखी मन से रोचना पीस रही थी और रोती जाती थी। तभी एक कुत्ता पीछे की गली से आ गया। उसने ऐपन जूठा कर दिया। बहन ने ऐपन भरा हाथ कुत्ते के सिर पर मार दिया। उसे दुख हुआ कि एक तो मुझे भाई को टीका लगाने नहीं मिलेगा, दूसरे कुत्ते ने ऐपन को जूठा कर दिया। कुत्ता बहन के सामने से चला गया। जब वह कुत्ता थोड़ी देर में बहनोई के दरवाजे से निकला, तो उसके माथे पर टीका लगा था। बहनोई अन्दर आया और अपनी पत्नी को डाँटने लगा कि तूने अपने भाई को रोचना कैसे लगाया? पत्नी ने कहा – मैं तो कहीं नहीं गई, पर हाँ, एक कुत्ता आया था। मैंने रोचना भरा हाथ उसे मारा था। वे बोले, साला बाजी मार ले गया। उसकी उमर तो बढ़ गई है। फिर अपने साले को घर बुलाकर खाना खिलाया। जैसे उनके दिन फिरे, वैसे सबके दिन फिरें।

भाई दूज के दिन बहन के हाथ की बाएँ अँगूठे में अमृत रहता है। इससे टीका लगाने से भाई की आयु बढ़ जाती है।

भाई-दूज की कथा (५)

एक बुढ़िया थी। उसकी दो सन्तान थी – एक लड़का और एक लड़की। लड़की की शादी हो गई थी। बुढ़िया को लगता था कि बस्ती में रहने से लोग उसको गालियाँ देंगे। इसलिए अपने लड़के को लेकर वह बस्ती से दूर गाँव के बाहर एकान्त में जाकर रहने लगी। एक बार उस लड़के की बहन अपने मायके आई थी और पानी भरने कुँए पर गई। यमराज के लड़कों का विवाह होना था, तो यम के दूत ऐसे इंसान को ढूँढ़ रहे थे, जिसे आज तक किसी ने गाली न दी हो। बस्ती में किसी ने बताया कि बस्ती के अन्दर तो कोई ऐसा नहीं मिलेगा। गाँव के बाहर एक बुढ़िया रहती है। उसके लड़के को आज तक किसी ने गाली नहीं दी है। यह बात लड़की ने कुएँ पर सुन ली और गाली देने लगी। दूसरों को तो कम गाली पड़ी, पर इस लड़के यानि अपने भाई को तो अनगिनत गालियाँ देने लगी। लड़की ने कुएँ पर ही बोलना शुरु कर दिया – ''भैया मरे, भौजिया राँड़।'' गाली देते-देते

जब बहिन घर आई, तो सब सोचने लगे इसका दिमाग खराब हो गया है। कुछ समय बाद यमराज के दूत चले गये।

कुछ दिनों बाद उस लड़के की शादी होने लगी। बहन बोली पहले मेरा टीका चढ़ेगा, फिर भाई का टीका होगा। बारात जाने लगी, तो बोली, ''मैं भी बारात में चलूँगी।'' सबने कहा इसे भी चलने दो, यह पगली है न! शादी होकर बहू घर आ गई। अब यह लड़की बोली, मैं भी भाई-भाभी के कमरे में उनके साथ सोऊँगी। सब सो गये। रात में नाग देवता आये। बहिन ने उनके टुकड़े-टुकड़े करके टोकनी के नीचे ढाँक दिया। सुबह हुई, तो अपनी माँ से बोली मैं अपने ससुराल जाऊँगी। माँ ने कहा, ''बेटी तुम पगली ठहरी, कहाँ जाओगी। बुरा-भला बच्चा, तो माँ के पास ही रह पाता है। तुम मेरे पास रहो।'' लड़की बोली – मैं पागल नहीं हूँ। मैं तो माँ को पुत्रवती करने आई थी। भाभी का सोहाग बढ़ाने आई थी। यमराज के लड़कों का ब्याह था। जिस व्यक्ति को कभी गाली न पड़ी हो, उस व्यक्ति के चमड़े से जूते बनाने थे। इसलिए मैंने भाई को इतनी गालियाँ दीं कि उसके चमड़े के जूते न बनने पाये। यमराज ने भाई को काटने के लिए नाग भेजा, जिसे मारकर मैंने टोकनी के नीचे ढँककर रख दिया। सब लोग यह देख-सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। माँ ने देखा उस दिन भाई-दूज का दिन था। इसलिए भाई को बहिन की गालियाँ वरदान बन गई। बहन ने अच्छी तरह अपने भाई को टीका लगाया, नारियल मिठाई भैया-भाभी को दी। भाई ने द्रव्य देकर बहन को आशीर्वाद दिया। अच्छी तरह महावर लगाकर कपड़े, गहने, पकवान आदि देकर बहन को बिदा किया। जैसे उनके दिन बहुरे, वैसे सबके दिन बहुरें।

बहन की गालियाँ भी भाई को आशीर्वाद जैसी लगती हैं, तब से यह त्यौहार और महत्त्वपूर्ण हो गया है।

भाई-दूज की कथा (६)

एक भाई-बहन थे। भाई परदेश में रहता था। भाई-दूज का दिन था। भाई अपनी बहन से टीका लगवाने उसके घर को जाने लगा। रास्ते में गंगा-यमुना में बाढ़ आ गई। उसने उन्हें पूड़ी बनाकर दी, तो बाढ़ उतरी। आगे चला, तो सिंह गरजने लगा। भाई ने उसे सेन्दूर माना। आगे बढ़ा, तो नाग देवता मिले, उन्हें दूध पिला दिया। इतनी बाधाओं को पार करके बहन के घर पहुँचा। बहन पूजा कर रही थी। वह दौड़कर पड़ोसिन से पूछकर आई कि भैया को क्या बनाकर खिलाऊँ। पड़ोसिन ने कहा – घी में चावल बना ले, दूध में पूड़ी बना ले। आज खीर-पूड़ी बनाना। आज खीर-पूड़ी खिलानी चाहिये। बेचारी दूध में पूड़ी डालती, तो टूट जाती, घी में चावल डालती, तो चट-चट करके जल जाता। वह बड़ी परेशान हो गई। जब बहुत देर हो गई, तो भाई ने पूछा – क्या खाना बना रही हो? मुझे बताओ। बहन बोली, ''बस, भैया बन ही गया है। खीर-पूड़ी बना रही हूँ।'' उसने उठाकर देखा, तब कहा घी में पूड़ी बना और दूध में चावल बना। बहन ने वैसा ही किया। झट से खाना बन गया। उसे टीका लगाया और रास्ते के लिए पूड़ी, खीर और भाभी के लिये सेंदूर रख दिया। इतने में कुत्ता आ गया। उसने एक पूड़ी उसे डाल दी। उसे खाते ही कुत्ता बेहोश हो गया। बहन दौड़ी-दौड़ी गई और कही – भैया, पूड़ी मत खाना। उसमें नाग देवता पिस गये हैं। आज चक्की चलाना, रूई की पूनी बढ़ाना, कंघी करना मना है। भाई लौटकर आया, तो बहन ने दूसरे आटे की पूड़ी बनाई और भाई को बिदा किया। जैसे उनके दिन बहुरे, वैसे ही सबके दिन बहुरें। अगर भाई ने कोई मन्नत की हो, तो बहन उसे पूरा कर सकती है।

ये कुछ प्रचलित कथाएँ हैं, जो अन्य प्रान्तों में कही जाती हैं। इस प्रकार भाई-दूज का यह त्योहार बहनों द्वारा भाई को दिया हुआ अमोघ वरदान है, अनुपम उपहार है, जिस ऋण को भाई जीवन में कभी भी चुका नहीं पाता है। ○○○

पृष्ठ ४९२ का शेष भाग

मैं स्वामीजी के मद्रासी शिष्य आलासिंगा पेरुमल, जी. जी., किडी आदि के साथ स्टाल पर बैठा था। स्वामीजी के प्रिय शिष्य, सुविख्यात संकेत-लेखक श्री गुडविन फुटलाइट के पास बैठकर उनके धाराप्रवाह व्याख्यान को सहज भाव से लिपिबद्ध किये जा रहे थे। बीच-बीच में वे आलासिंगा की ओर देखकर अपनी मुखभंगिमा भी प्रकट करते थे। परन्तु स्टेट्समैन के संकेत-लिपिक का हाथ ठहरा हुआ देखकर आलासिंगा ने कहा, ''आपने देखा न, गुडविन कितने बड़े स्टेनोग्राफर हैं!'' व्याख्यान के दौरान ही मैं एक बार बाहर जाकर फिर स्टेज के भीतर वापस लौटा। वहाँ लोगों को आपस में बातें करते सुना कि स्वामीजी के एक औंस मूत्र में बीस ग्रेन शर्करा मिली है। सबका मत था कि उन्हें एक-दो दिनों के भीतर ही दार्जिलिंग भेज दिया जाय। स्वामीजी की वैसी हालत में उन्हें कलकत्ते में रखना निरापद नहीं था। **(क्रमशः)**

रामराज्य का स्वरूप (१/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय
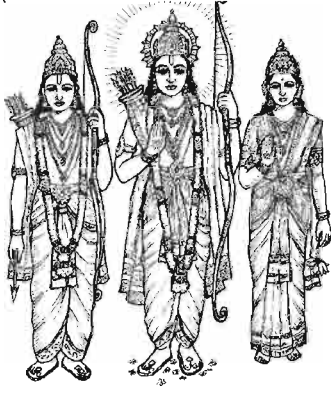
(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं।
पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरु नारी।
सकल परम गति के अधिकारी।।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।
सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी।
सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।। ७/२०/१-८
राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।। ७/२१/०

श्रद्धेय स्वामीजी महाराज, समुपस्थित कथा-रसिक बन्धुओ और भक्तिमति देवियो! पुन: इस वर्ष यह सौभाग्य मिला है कि विवेकानन्द जयन्ती के पावन पर्व में, भगवान श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव के पावन अवसर पर यहाँ भगवान के मंगलमय गुणों की कुछ चर्चा की जा सके। वैसे तो सर्वत्र ही रामकथा के रस के अनगिनत पिपासु कथा-श्रवण के लिये व्यग्र रहते हैं, किन्तु यहाँ आकर के इस पवित्र अवसर पर बोलकर मुझे स्वयं में धन्यता की अनुभूति होती है और इस पावन साधना-स्थली में आपकी जिज्ञासा वृत्ति को देखकर प्रसन्नता होती है। प्रसंग के विषय में मैंने आदरणीय स्वामीजी महाराज से आग्रह किया था। उनका आग्रह है कि पिछले वर्ष रामराज्य के सन्दर्भ में जो प्रसंग चल रहा था, इस वर्ष भी मैं उसी प्रसंग में कुछ कहूँ। यद्यपि यत्किंचित् कुछ कठिनाई का अनुभव मैं कर रहा हूँ, क्योंकि पिछले वर्ष मैंने क्या कहा, किस पद्धति से बात रखी थी, वे सारी बातें मेरे स्मृति-पटल से लुप्त हो चुकी हैं। लेकिन फिर भी राम-कथा चिरन्तन है और आपके समक्ष रामराज्य के सन्दर्भ में कुछ दृष्टियाँ रखने की चेष्टा की जायेगी। मुझे विश्वास है कि आप पूरी एकाग्रता और तन्मयता से उसका रसास्वादन करेंगे। अभी आपके सामने जो पंक्तियाँ पढ़ी गईं, अगर आपने ध्यान दिया हो और यदि न भी ध्यान दिया हो, तो आप जब ध्यान देंगे, तो इन सारी पंक्तियों में एक शब्द का बार-बार प्रयोग किया गया है और वह शब्द है 'सब'। गोस्वामीजी 'सब' शब्द की पुनरावृत्ति बार-बार करते हैं। वे प्रत्येक पंक्ति में, हर दो पंक्ति के बाद उस शब्द का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। यह जो 'सब' शब्द है, यही रामराज्य का मूल आधार है। संसार में अनगिनत व्यक्ति हैं, अनगिनत प्राणी हैं, विविधि योनियाँ हैं और कर्मशास्त्र की मान्यता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोगने के लिए बाध्य है।

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा। २/२१८/४

सृष्टि में अनगिनत व्यक्ति दु:ख भोग रहे हैं, अनगिनत व्यक्ति सुख भोग रहे हैं और प्रत्येक व्यक्ति कभी दु:ख और कभी सुख के चक्र में पड़ा हुआ दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में सृष्टि दुखमयी है। यदि उपरोक्त दृष्टि से विचार करके देखें, तो प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों का परिणाम भोगना होगा।

अभी जो पंक्तियाँ आपके सामने रामराज्य के सन्दर्भ में पढ़ी गईं, उनमें गोस्वामीजी ने एक नई बात कही। उन्होंने

कहा कि रामराज्य में न कोई दरिद्र था, न तो दीन था, न दु:खी था। सभी व्यक्ति सुखी थे, स्वस्थ थे, सुन्दर थे। किसी प्रकार का दैहिक, दैविक, भौतिक ताप रामराज्य में था ही नहीं। इन पंक्तियों के बाद अन्त में और स्पष्ट शब्दों में घोषणा की गई कि जो चार प्रकार के दु:ख होते हैं, उनका रामराज्य में अभाव था –

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।। ७/२१/०

व्यक्ति के जीवन में चार प्रकार के दुख आते हैं और उनका नामकरण किया गया – कालकृत दु:ख, कर्मकृत दु:ख, स्वभावकृत दु:ख और गुणकृत दु:ख।

सृष्टि के मूल में, सृष्टि के सृजन में, सृष्टि की स्थिति में और सृष्टि के विनाश के मूल में कौन विद्यमान है? उसका उत्तर यह है कि सबके मूल में काल ही कार्य कर रहा है। एक भ्रूण कैसे माँ के गर्भ में आता है, धीरे-धीरे काल के द्वारा उसका विकाश होता है। कितने काल की अवधि के बाद कैसे उसका जन्म होता है। कैसे वह और आगे चलकर शिशु के रूप में, किशोर के रूप में, युवा और वृद्ध के रूप में परिवर्तित होते जाता है। इस सारी सृष्टि में शरीर के विकास और ह्रास की जो प्रक्रिया है, उसके मूल में काल ही तो हेतु है। ऐसी स्थिति में काल के द्वारा जब सृजन होता है, तो व्यक्ति को प्रसन्नता होती है। काल के द्वारा जब पालन होता है, तो व्यक्ति को उससे भी अधिक आनन्द की अनुभूति होती है। काल की अंतिम परिणति संहार के रूप में होती है, वृद्धावस्था और मृत्यु के रूप में होती है। जब काल का यह तीसरा स्वरूप व्यक्ति के सामने आता है, तो व्यक्ति भयभीत और आतंकित हुए बिना नहीं रह पाता, पर उसे टाला नहीं जा सकता। वह अवश्यम्भावी है। अन्तत: काल का यह रूप व्यक्ति के जीवन में अनिवार्य है।

भगवान शंकर के विवाह का बड़ा ही व्यंग्यात्मक प्रसंग आता है। भगवान शंकर का परिचय रामायण में महाकाल के रूप में दिया गया है। उनके लिये ये दो विशेषण रखे गये और उन दोनों में परस्पर विरोधाभास है। शंकरजी के लिए कहा गया – **करालं महाकालकालं कृपालम्** – जो कराल हैं, महाकाल हैं और परम कृपालु हैं। 'करालं महाकालकालं' के साथ 'कृपालु' शब्द का प्रयोग बड़ा अटपटा-सा प्रतीत होता है। उसका निहित तात्पर्य यह है कि अगर काल के बहिरंग रूप पर हम दृष्टि डालेंगे, तो निश्चित रूप से वह कराल के रूप में, भयावने रूप में ही सामने आयेगा। लेकिन जब काल के अन्तरंग तत्त्व पर दृष्टि जायेगी, काल के अन्तरंग रूप पर दृष्टि जायेगी, तो ऐसा लगने लगेगा, जैसे काल की कठोरता के अन्तराल में भी कोमलता विद्यमान है।

भगवान शंकर के विवाह का जो वर्णन किया गया, उस वर्णन में कुछ बातें ऐसी कही गई हैं, जिसको पढ़कर व्यक्ति हँसे बिना नहीं रह पायेगा, मुस्कराये बिना नहीं रह पायेगा। शंकर-पार्वती के विवाह की कथा जब कही जाती है, तो बहुधा वह बड़ी मनोरंजक हो जाती है, श्रोता बार-बार आनन्दित हो उठते हैं, पर क्या आपने ध्यान दिया? वह कथा सुनने में जितनी सुहावनी थी, उसको जिन्होंने देखा, उनके लिए उतनी ही दुखदाई भी थी। आज आप हँसते हैं, पर क्या आपने सोचा कि सचमुच जिन्होंने इस दूल्हे को देखा, उनकी दशा क्या हो गई थी? गोस्वामीजी वर्णन करते हैं कि भगवान शंकर के बारात में देवता हैं, भूत हैं, प्रेत हैं, पिशाच हैं। शंकरजी के अनेक नामों में एक नाम है 'सर्व'। भगवान शंकर की जब बारात चलती है, तो उस बारात में एक ओर सौन्दर्य है और दूसरी ओर कुरूपता है, एक ओर आनन्द है, दूसरी ओर भय और आतंक है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि हम काल का स्वागत करना चाहें, तो काल के समग्र रूप का स्वागत कर पाना अत्यधिक कठिन है। काल का एक पक्ष हमें बड़ा प्रिय प्रतीत होता है, किन्तु काल का दूसरा पक्ष सामने आते ही हम आतंकित हो जाते हैं। इसीलिए गोस्वामीजी ने संकेत किया और उसमें उन्होंने प्रतीक चुना हिमांचल नगर के बालकों को। बारात के आगमन का समाचार सुनकर बालकों के हृदय में बारात देखने की, बारात का स्वागत करने की उत्कण्ठा जाग्रत हुई और वे बड़ों से भी पहले उस बारात को देखने के लिए चल पड़े। सबसे पहले उनकी दृष्टि देवताओं के ऊपर गई। देवताओं को देखकर क्या हुआ?

हियँ हरषे सुर सेन निहारी। १/९४/३

देवताओं को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वही जीवन का सत्य है। जब पुण्य का फल हमारे समक्ष होता है, तो प्रसन्न होना स्वाभाविक है और उसमें भी देवताओं को देखकर वे कल्पना करने लगे कि इन देवताओं में दूल्हा कौन हो सकता है। सबसे पहले इन्द्र ऐरावत हाथी पर चल रहे थे। बालकों ने सोचा कि शायद यही दूल्हा होगा। पर इन्द्र ने कहा, दूल्हा पीछे है। तब बालकों ने ब्रह्मा को देखा, विष्णु

को देखा। विशेष रूप से भगवान विष्णु को देखकर तो बड़ी ही प्रसन्नता हुई! यह निश्चित धारणा बन गई कि ये ही दूल्हा हैं। क्योंकि दूल्हा प्राय: पीला वस्त्र धारण करते हैं। भगवान विष्णु पीताम्बर धारण किए हुए जब दिखाई पड़े, तो बालकों के उत्साह की सीमा नहीं रही। पर भगवान विष्णु ने मुस्करा कर बालकों से कहा – दूल्हे तो अभी पीछे हैं। सचमुच जब दूल्हे पर दृष्टि गई, तो गोस्वामी जी ने लिखा।

हियँ हरषे सुर सेन निहारी।
हरिहि देखि अति भए सुखारी।।
सिव समाज जब देखन लागे।
बिडरि चले बाहन सब भागे।। १/९४/३-४

इसका अभिप्राय क्या है? एक तो बालक का चुनाव, बालक शब्द केवल अवस्था के सन्दर्भ में ही नहीं है। उसका अभिप्राय है कि बालकों की वृत्ति जो होती है, वह कल्पना करते हुए आनन्दित रहने की होती है। बालक बड़े कल्पनाशील होते हैं। उसी प्रकार संसार में अनगिनत व्यक्ति हैं, जो अल्पज्ञ हैं, जिनमें बालवृत्ति है और वे अपनी कल्पना के द्वारा ही, कल्पना में ही आनन्दित रहकर अपने को भुलावा देते रहते हैं। जो लोग कल्पना में भुलावा देकर स्वयं सुखी रहने के अभ्यस्त हैं, जब उनके सामने जीवन का सत्य आता है, जीवन की वास्तविकता आती है, तो उस वास्तविकता के आने पर वे आतंकित और भयभीत हुए बिना नहीं रह पाते।

उसका यहाँ पर संकेत किया गया कि भगवान शंकर के भक्तों में देवता ही नहीं, भूत-प्रेत-पिशाच भी हैं। भूत-प्रेत-पिशाचों से व्यक्ति को कितना डर लगता है ! बच्चों की बात क्या है, जो बड़े दिखाई देते हैं, वे भी भूत-प्रेत के आतंक से ग्रस्त दिखाई देते हैं। मानों यही सर्व का पूर्ण रूप है, जिसमें जीवन भी है, मृत्यु भी है, विष भी है, अमृत भी है, सौन्दर्य भी है, कुरूपता भी है, हास्य भी है और साथ-साथ विलाप-रुदन भी है। भगवान शंकर और उनकी बारात को देखकर आतंकित होकर बालक भाग खड़े हुए। वे आतंकित बालक भागते हुए अपने घरों में जाते हैं, तो माताओं ने पूछा क्या बात है, तुम इतने डरे हुए क्यों हो? बारात कैसी है? उन्होंने यही कहा –

जम कर धार किधौं बरिआता।।

और दूल्हा कैसा है? बोले –

बरु बौराह बसहँ असवारा।
ब्याल कपाल बिभूषन छारा।। १/९४/५-६

शरीर पर साँप लिपटे हुए हैं, चिता की राख लगी है। गहराई से विचार करके देखें, तो भगवान शंकर के कण्ठ में गरल, विष है, मस्तक पर एक ओर गंगा की धारा बह रही है, दूसरी ओर नेत्रों में अग्नि की ज्वाला है। उनके शरीर पर लिपटी हुई चिता की राख काल का ही व्यापक रूप है। इस काल को देखकर इसका स्वागत कर पाना बालकों के लिये तो कठिन है ही। वहाँ एक बहुत बढ़िया व्यंग्य किया गया। बालकों की जो माताएँ थीं, जो अपने को बड़ी बुद्धिमती मानती थीं, उन्होंने बालकों को समझाने की चेष्टा की – भगवान शंकर की बारात है, डरने की आवश्यकता नहीं है। यह बहुत बढ़िया व्यंग्य है कि भाषण के मंच से भाषण देना बड़ा सरल है कि काल से मत डरो, काल से निर्भय रहो, लेकिन सचमुच जब काल सामने खड़ा हो जाय, तो बड़े-बड़े प्रवचन देनेवाले, दूसरों को बड़ी प्रेरणा देनेवाले भी आतंकित हुए बिना नहीं रहते। माताओं ने बच्चों को तो कह दिया कि डरो मत, धीरज रखो, पर दूल्हा जब हिमांचल के द्वार पर आया और मैना स्वर्णथाल में आरती सजाकर दूल्हे का स्वागत करने द्वार पर आई, तब गोस्वामीजी ने कहा कि इस दूल्हे की आरती कौन उतारे, स्वागत कौन करे? उसका अर्थ यह है कि हम जन्म का स्वागत करेंगे, हम युवावस्था का स्वागत करेंगे, पर काल जब द्वार पर खड़ा हो, मृत्यु सामने खड़ी हो, उसका स्वागत न कर पाना, यह मैना बुद्धि का प्रतीक है। हिमांचल अचल हैं और मैना बुद्धि हैं। अचल हिमांचल की पत्नी मैना बुद्धि हैं, वे भी इस स्वरूप को देखकर आतंकित हुए बिना नहीं रहती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि बुद्धिमान-से-बुद्धिमान, धैर्यवान-से-धैर्यवान व्यक्ति भी जब काल के कराल रूप को देखता है, तो आतंकित हो जाता है। मैना ने स्वागत करने के स्थान पर आरती के थाल को पटक दिया, आरती का दीप बुझ गया और वे रोती हुई, विलाप करती हुई हिमांचल के महल में चली जाती हैं और बड़ी दुखी होकर सोचती हैं, क्या इसी पागल वर को पाने के लिए मेरी कन्या को नारद ने तपस्या करने का उपदेश दिया था। नारद को भी पाँच-दस खरी-खोटी सुना देती हैं। उसके पश्चात् देवर्षि नारद सप्तर्षियों के साथ आते हैं और तब मैना के अन्त:करण की भ्रान्ति दूर होती है। भगवान

शेष भाग पृष्ठ ५२१ पर

सेवानिष्ठ डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

भारतवर्ष महापुरुषों की भूमि है। इस राष्ट्र के महापुरुषों ने भारत के इतिहास को पूरे विश्व में गौरवान्वित किया है। महापुरुषों की जीवनियों का अध्ययन सम्पूर्ण विश्व की मानव जाति के कल्याण के लिए शिक्षादायी, मार्गदर्शक एवं प्रेरणा का स्रोत रहा है। आइए, हम ऐसे ही एक महान् व्यक्तित्व, धर्मवीर डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे के प्रेरणात्मक एवं सेवानिष्ठ जीवन का अध्ययन करें।

डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे का जन्म छत्तीसगढ़ के बिलासपुर नगर में १२ दिसम्बर, १८७२ को हुआ। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा बिलासपुर एवं मैट्रिक की परीक्षा रायपुर से उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए हिस्लॉप कॉलेज, नागपुर में प्रवेश लिया। उनके घर की आर्थिक परिस्थिति अच्छी नहीं थी। अत: बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने से मिलनेवाले रुपयों, तथा कॉलेज की ओर से मिलनेवाली छात्रवृत्ति से उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी।

बालकृष्ण का शरीर सुदृढ़ था। उनके पिता उन्हें 'तात्या' कहकर पुकारते थे। उनके विद्यालय के कुछ सहपाठी उनसे ईर्ष्या करते थे। एक बार एक विद्यार्थी, जो उनसे आयु में चार-पाँच वर्ष बड़ा था, बिना किसी कारण से उनके साथ लड़ाई करने लगा। तात्या ने उसे खूब मारा, जिससे उसका अहंकार ही चकनाचूर हो गया। इसके बाद विद्यार्थियों ने उन्हें अपना नेता बना लिया।

वे अत्यधिक साहसी थे। एक बार उन्हें और उनके साथियों को नदी में दो चमकती हुई आँखें नजर आईं। उनके साथी भूत समझकर वहाँ से डर के मारे भाग निकल गए। परन्तु तात्या ने बिना किसी डर के नदी में छलांग लगाई और उन आँखों के पास गए। वे केवल पत्थर के टुकड़े थे, जो दूर से आँखों के समान चमक रहे थे। दूसरे दिन विद्यालय में उनके प्रधानाध्यापक ने उनके इस साहस की प्रशंसा की।

उन्हें चित्रकला में भी रुचि थी। पहले बैलगाड़ी में बिलासपुर से रायपुर जाने के लिए बीहड़ जंगल से होकर जाना पड़ता था। एक बार उन्होंने चित्रकला की कक्षा में बीहड़ जंगल का दृश्य इतनी सुन्दरता से उतारा कि उनके सभी शिक्षक देखकर दंग रह गए। उन्हें उनकी इस चित्रकारिता के लिए पुरस्कृत किया गया।

उन्होंने मुम्बई के ग्रांट मेडिकल कालेज में एल.एम.एस. के अध्ययन के लिए जाने का निश्चय किया। उनके पिता चाहते थे कि वे वकील बने, परन्तु उन्होंने वकील बनना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने अपना अध्ययन पूरा किया और मुम्बई महानगरपालिका के स्वास्थ्य विभाग में उन्हें नौकरी मिल गई। वे नेत्र रोगों के इलाज के लिए प्रसिद्ध चिकित्सक माने जाते थे। उन्होंने कॉटरेक्ट (मोतियाबिंद) के इलाज के लिए एक प्रभावी एवं नई पद्धति की खोज की। वे अपनी इस पद्धति का प्रदर्शन नहीं कर पाए, क्योंकि उन दिनों किसी भी भारतीय को नेत्र पर शल्यक्रिया करने का अधिकार नहीं था। उन्होंने नेत्रचिकित्सा पर संस्कृत में रचना की, जो १९३० में पूना से प्रकाशित हुई।

सन् १८९८ में जब प्लेग की महामारी फैली तो उन्होंने घर-घर जाकर रोगियों का परीक्षण और उपचार किया। सन् १९०० में उन्होंने बिलासपुर में एक चिकित्सक के रूप में कार्य करना आरम्भ किया। सन् १९०३ तक उन्होंने नेत्र-चिकित्सा सम्बन्धित अध्ययन, चिन्तन एवं ग्रन्थ-रचना की। उसके बाद वे स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने लगे।

डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे की मृत्यु ४ मार्च, १९४८ को नासिक में हुई। उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेकर देश के क्षात्र-तेज को पुन: जाग्रत करने के लिए अथक प्रयत्न किया। वे एक चिकित्सक होने के नाते केवल रोगियों की सेवा करने तक ही सीमित नहीं थे, बल्कि उनके अन्दर देश-सेवा करने का भाव भी निहित था। वास्तव में, वे एक सेवानिष्ठ एवं महान् व्यक्तित्व थे। ○○○

भजन एवं कविता

सौ-सौ जय-दीप जलाता चल

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश', उत्तर प्रदेश

ओ मेरे मन के राजहंस ! तू गीत देश के गाता चल ।
तू देशभक्ति की वेदी पर सौ-सौ जयदीप जलाता चल ।।
है जन्म लिया जिस धरती पर उसका सबको है प्यार मिला,
सुखमय जग जीवन जीने का, सबको ही है अधिकार मिला ।
उसके प्रति सदा समर्पित हो तू भक्ति-भाव उमगाता चल,
ओ मेरे मन के राजहंस ! तू गीत देश के गाता चल ।।
है जन्मभूमि भी जननी ही, जो सबको सब कुछ देती है,
शिशु के समान ही मान सदा, सबको आजीवन सेती है ।
इस मातृभूमि की माटी से मस्तक पर तिलक लगाता चल,
ओ मेरे मन के राजहंस ! तू गीत देश के गाता चल ।।
यह भूमि वही जिस पर सदैव, सुर भी तो आते जाते हैं,
जिस पर पाने को जन्म सदा, वे मन ही मन ललचाते हैं ।
इसकी सेवा में तू अपने श्वासों के फूल चढ़ाता चल,
ओ मेरे मन के राजहंस ! तू गीत देश के गाता चल ।।
है सुफल यही इस धरती पर, दुर्लभ मानव तन पाने का,
जिससे भारत माँ व्यथित न हो, है धर्म वही अपनाने का ।
'मधुरेश' सदा जन के मन से तू भय का भाव भगाता चल ।
ओ मेरे मन के राजहंस ! तू गीत देश के गाता चल ।।

दीपावली की अवधारणा

कु. विश्वा शर्मा

विवेकानन्द केन्द्र, जोधपुर

लाखों दीप जल रहे हैं, एक मेरी साधना ।
यज्ञ अगणित जल रहे हैं, माँ तेरी आराधना ।।
योग, स्वाध्याय संस्कार से पूर्ण होगी साधना ।
ज्योतिपुंज हम बनें, करें भारत वन्दना ।।
करें अपना सर्वस्व समर्पण, दीप से दीप हमें है जलाना ।
ले मन्त्र राष्ट्रसेवा का, युवा भारत को है जगाना ।।
घर-घर से राम निकलें, हर रावण को है संहारना ।
घर-घर में दीप जल उठे, यह दीपावली की अवधारणा ।।
हम करें राष्ट्र आराधना ! हम करें राष्ट्र आराधना !

योगीराज तुम श्रेष्ठ महान

डॉ. ओम प्रकाश वर्मा, रायपुर

जय शिवशंकर पूर्ण परात्पर, ज्ञानविभाकर सच्चित्-धाम ।
विश्वनाथ विभु विभूतिभूषण, योगीराज तुम श्रेष्ठ महान ।।
आशुतोष तुम ब्रह्म सनातन, सद्गतिदायक आप्तप्रमाण।
सज्जनपालक दुर्जननाशक सकलदेव करते गुण-गान।।
असुरों के तुम सहज विनाशक सब देवन को देते त्राण ।
कालकूट विष को पीकर तुम, करते सबको अमृत-दान ।।
भक्तिसुधा-रस सहज प्रदायक, रामभक्ति के दिव्य प्रमाण।
गौरीप्रिय तुम भुवनमहेश्वर रिपुगणसूदक अति बलवान ।।
जीवन-तम के त्वरित विनाशक, कृपा करो हे कृपानिधान ।
भक्तिभाव से जीवन भर दो, चरणों में दो चिर स्थान ।।

सद्गुरु ब्रह्मा विष्णु महेश्वर

देवेन्द्र प्रसाद, पश्चिम बंगाल

सद्गुरु ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर, खेवनहार हमारे हैं।
प्रभु पारब्रह्म परमेश्वर, तारणहार हमारे हैं।।
भव सागर में डूब रहे हम, जन्म-मरण दुख झेल रहे हम।
करुणासिन्धु शरण में लेकर पार करावनहारे हैं।।
प्रभु पारब्रह्म परमेश्वर...
दूध–अमृत पी बड़े हुए, पर, मन विषयों से भरा हुआ है।
गुरु-मन्त्र और सत्संग से विषय-विष नशावनहारे हैं।
प्रभु पारब्रह्म परमेश्वर...
अज्ञान-तिमिर से मार्ग न दिखता, सार वस्तु भगवान न मिलता।
गुरु लोचन-मोतियाबिन्द हटाते, वे धन्वन्तरी हमारे हैं।।
प्रभु पारब्रह्म परमेश्वर...

आध्यात्मिक गुरु के द्वारा संप्रेषित जो ज्ञान आत्मा को प्राप्त होता है, उससे उच्चतर एवं पवित्र वस्तु और कुछ नहीं है। यदि मनुष्य पूर्ण योगी हो चुका है, तो वह स्वत: ही उसे प्राप्त हो जाता है। किन्तु पुस्तकों द्वारा तो उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। तुम संसार के चारों कोनों में – हिमालय, आल्प्स, काकेशस पर्वत अथवा गोबी या सहारा की मरुभूमि या समुद्र के तल में जाकर अपना सिर पटको, पर बिना गुरु मिले तुम्हें वह ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। – **स्वामी विवेकानन्द**

सारगाछी की स्मृतियाँ (९७)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१८-१०-१९६३

महाराज – हमलोगों को योगाभ्यास करना चाहिए। सुस्थिर बैठकर लयबद्ध श्वास-प्रश्वास (Rythmical breathing) लो। मैंने एक दिन छह-सात सौ तक किया है! किन्तु यदि अभ्यास करता, तो आज निश्चिन्त होकर रहता। ठाकुर के शिष्यवृन्द – खोका, हरि, बाबूराम, शरत, राखाल महाराजगण 'नैव किञ्चित् करोमीति' भाव में रहते थे। तुम लोग सुस्थिर होकर बैठने का अभ्यास करो। अपने लिये पथ्य-आहार से रंचमात्र भी अधिक मत खाओ, कठोर नियम-पालन करो, युक्ताहार-विहार करो। सर्वत्र तामसिक बुद्धि में रजोगुण आ गया है, 'अनपेक्ष्य च पौरुषम्।'' फिर भी इसी प्रकार अग्रसर होना होगा। Failures are the pillars of success. – विफलताएँ सफलता का स्तम्भ हैं।

२४-१०-१९६३

महाराज – मैं देख रहा हूँ कि जो लोग नए आ रहे हैं, उनके लिए स्वाध्याय अत्यावश्यक है। केवल स्वाध्याय लेकर रहने से वैसी प्रगति नहीं होने पर भी निष्ठा आती है। सौम्यानन्द और देवेश दोनों की खूब निष्ठा है। सौम्यानन्द जब गीतों का सस्वर पाठ करता है, तब समझ में आता है कि वह कितना अनुप्रेरित है। वह कहता है – ''इन गानों में ही ठाकुर का सब भाव है।'' यह सब ज्ञानमिश्रित भक्ति है, इसमें आवेग दबा पड़ा है। वैष्णवों की रागानुगा भक्ति में आवेग प्रधान होता है।

प्रश्न – महाराज, यदि किसी को अनुचित कर्म करते देखूँ, तो क्या उसे मना करना उचित है?

महाराज – यदि कोई निन्दित कर्म करे और यदि तुम्हारा मना करना उचित है (अर्थात् यदि वह तुम्हारी बात को महत्त्व दे), तो ऐसा प्रतीत होता है कि उसे समझाकर बता दो। ऐसा नहीं होने पर उपेक्षा करके चले जाना – उदासीन हो जाना ही अच्छा है। इसीलिये तो साधु को दाहिने-बाएँ नहीं देखना चाहिए। केवल प्रार्थना करो – ठाकुर मेरी रक्षा करो! मेरी बुद्धि को ठीक रखो! मेरी बुद्धि में तुम प्रकाशित हो जाओ!

प्रश्न – गीता में उपमा दी गई है – 'धूमेनाग्निरिवावृता:'। किन्तु हीटर कहाँ है? आग है, धुआँ कहाँ है?

महाराज – इसीलिये तो ठाकुर आए – पूर्ववर्ती सभी उपमाओं के बदले आधुनिक उपमाओं से सब चीजों को समझाने के लिये।

२८-१०-१९६३

महाराज – शिक्षण संस्थायें निम्नकोटि की होने पर भी अच्छी हैं। वहाँ कुछ न हो, तब भी अच्छे लोगों के साथ वास होता है। उनमें कम-से-कम आत्म-सम्मान का बोध रहने से अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए भी वे सहज ही निन्दित कर्म नहीं करेंगे। अन्यत्र जहाँ भी जाओगे, यही सब गिरावट देखोगे – तीनों गुणों का खेल, खाने-पीने की अनियमितता, उदासीनता, हृदय का अभाव। ठाकुर की कोई चर्चा नहीं। इसलिए जहाँ शरीर स्वस्थ और मनोनुकूल कोई मित्र रहे, उसे ही श्रेष्ठ समझकर निश्चिन्त होकर वहीं पर वास करो। अकारण ही आश्रम की नाली की गंदगी निकालकर अपने मन को कलुषित और उद्विग्न मत करो।

मेरे पास दूसरी कोई बात नहीं है – केवल ठाकुर और स्वामीजी की वाणी है। इसीलिए जो लोग मेरे पास रहते हैं, वे सामान्यतया अच्छे हैं। यह एक परीक्षा है। शंकर और रामानुज का भाष्य एकांगी है। एक अद्वैत की ओर खींच रहे हैं, तो दूसरे विशिष्टाद्वैत की ओर। ब्रह्मसूत्र में वेदों की ही तो सभी बातें हैं। ब्रह्मसूत्र में अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत सब हैं। प्रकाश के झाड़ की कलम से देखने से एक ही विषय विविध प्रकार से दिखता है। एक चित् – चैतन्य हैं, उनके सामने एक आवरण पड़ गया, तो एक प्रकार का दिखाई पड़ा और दूसरा आवरण पड़ गया, तो एक अन्य प्रकार

का दिखाई पड़ा। किन्तु वास्तव में वह एक ही प्रकार का है। महापुरुषगण युग-प्रयोजन के अनुसार एक-एक बात पर जोर देते हैं।

प्रश्न – अवतार के आविर्भाव का उद्देश्य क्या है?

महाराज – देश में सती-प्रथा आदि अत्याचार था तथा पादरियों द्वारा हमारे धर्म की बहुत निन्दा किए जाने पर प्राकृतिक नियमानुसार ही समाज के गर्भ से उत्तुंग शिखर पर प्रतिक्रियास्वरूप राज-राममोहन राय आए। तदुपरान्त ब्रह्मसमाज अँग्रेजों का अनुकरण करने के कारण प्रभावहीन हो गया। तब प्रतिक्रिया स्वरूप शशधर तर्कचूड़ामणि, दयानन्द आदि कट्टर हिन्दूवादी सुधारक आए। अन्त में विवेकानन्द ने आकर सब ठीक कर दिया। क्योंकि इन सभी ने ठाकुर-स्वामीजी के आने का मार्ग तैयार कर दिया था। ठाकुर साधारण लोगों के लिए नहीं हैं। उनका भाव, उनकी बातें साधारण लोगों के लिये नहीं हैं। उनका भाव, तत्त्व और उनकी बातें साधारण लोग कम ही समझ सकते हैं।

सौम्यानन्द कहता है – एक मुसलमान ने श्रीमाँ का चित्र देखकर कहा था – यह बेटी सामान्य नहीं है! सारगाछी के युवकों ने कहा था – होमा पक्षी इतनी ऊँचाई पर जीवित नहीं रहेगा, वहाँ ऑक्सीजन नहीं है। निराकार समुद्र में लीला रूपी लहरों का चित्रांकन किया है, यह सब ब्रह्म-कुण्डलिनी-जागरण का परिणाम है। किन्तु अभिव्यक्त होने का सुअवसर नहीं है। यदि ये दिन भर गान, पाठ, पूजा, संस्कार पाते, तो सब अभिव्यक्त होता। दूसरों को समझाने से अपना अच्छा समझना हो जाता है। किन्तु साथ-साथ ध्यानाभ्यास नहीं रहने से पतन हो जाता है।

महाराज का शरीर जर्जर हो गया है – बिलकुल कंकालवत्। सौम्यानन्द महाराज आए हैं। वे राजा महाराज के शिष्य हैं और जब प्रेमेश महाराज सिलहट में रामकृष्ण-भावान्दोलन का कार्य कर रहे थे, तब सौम्यानन्द महाराज उनके दाहिने हाथ थे। प्रेमेश महाराज के शरीर में कोई क्षमता नहीं रह गई है, मन बाहरी विषयों के प्रति नि:स्पृह है, फिर भी महाराज कष्ट सहकर उनसे पिता-पुत्र की तरह बातें करते थे, वे दोनों केवल बातें ही नहीं करते थे, अपितु बातें करते हुए सौम्यानन्द महाराज आदर के साथ, धीरे-धीरे महाराज के हाथों को सहला भी देते थे। एक दिन सौम्यानन्द महाराज आकर महाराज के कमरे की खिड़की से झाँककर देख रहे हैं। सेवक ने भीतर से देखा, तो बाहर आकर पूछा, "क्या आप भीतर आएँगे?' वे बोले, "नहीं, नहीं, मैं महाराज को परेशान नहीं करना चाहता। मेरा एक काम है।" उन्होंने बड़ी विनम्रता से कहा, "मेरी जप-माला खो गई है। मैं एक नई जपमाला लाया हूँ। महाराज को जिस दिन, जब अच्छा लगे और इससे असुविधा न हो, तो तुम केवल महाराज से इसको स्पर्श करा देना।"

मैंने कहा, यह कौन बड़ा काम है! दीजिए, मैं अभी महाराज को इसे देकर जप कराकर ला देता हूँ। उन्होंने तुरन्त कहा, "देखो, कोई हड़बड़ी करने की आवश्यकता नहीं है। इसे अपने पास रख लो। बाद में जब महाराज को कोई असुविधा नहीं होगी, तब जप कराकर अपने पास रख लेना।"

अगले दिन महाराज को स्पंज स्नान कराने के बाद सब बातें बताकर उन्हें वह जप-माला दी गई। महाराज ने कहा, "यदि जप करना है, तो १०८ बार तो नहीं कर सकूँगा। सम्भवत: नाम उच्चारण कर दूँगा। इतना जप नहीं कर सकूँगा।" माँ के द्वारा छोटे बच्चे को कोई काम देने पर जैसे होता है, वैसे ही महाराज थोड़ा-थोड़ा जप कर रहे हैं और सेवक की ओर देख रहे हैं कि ठीक हो रहा है कि नहीं। सेवक ने कहा, "बस हो गया, अब और नहीं करना होगा।" ऐसा सुनकर मानो उन्हें राहत मिल गई। कैसा तृप्ति का भाव था! किन्तु उस माला को सेवक के हाथ में देने से पहले वे उसे अपने मस्तक से स्पर्श करके एक गम्भीर भाव में डूब गए। उन्होंने थोड़ी देर बाद उसे सेवक के हाथ में वापस दे दिया। जप के अन्त में उन्होंने कहा, जो निर्गुण ब्रह्म हैं, वे ही द्वापर में गोपाल हुए – उसी गोपाल के अवतार ब्रह्मानन्द हैं। उनसे जो शब्द मिला है, वह पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ उच्चारित शब्द है।

२९-१०-१९६३

महाराज ने परिहास करते हुए कहा, एक हिसाब से मैं तोतापुरी और रामकृष्ण से भी बड़ा हूँ। तोतापुरी के गुरु कौन हैं, पता नहीं। रामकृष्ण के गुरु तो तोतापुरी हैं, किन्तु मेरे गुरु स्वयं सगुण ब्रह्म – श्रीमाँ हैं। उन्होंने स्वयं शब्द उच्चारण करके, मन्त्रोच्चारण करके दिखा दिया है! जब माँ थीं, तब समझा नहीं। अब थोड़ा-थोड़ा उन्हें समझ पाता हूँ। इसीलिए तो शरीर के इतने दुख-कष्ट में भी उसी आनन्द में दिन बिता रहा हूँ!"

शेष भाग पृष्ठ ५२१ पर

प्रश्नोपनिषद् (६)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

स एष वैश्वानरो विश्वरूप: प्राणोऽग्निरुदयते। तदेतदृचाभ्युक्तम्।।७।।

अन्वयार्थ – एष यह (भोक्ता) **वैश्वानर:** सर्व-जीवात्मक (तथा) **विश्वरूप:** सर्व-प्रपंचात्मक **प्राण:** प्राण (तथा) **अग्नि:** अग्नि **स:** वह (भोक्ता ही) **उदयते** उदित होता है। **तत्** उक्त प्रकार वर्णित **एतत्** यह वस्तु (ही परवर्ती) **ऋचा** ऋक्-मन्त्र में **अभ्युक्तम्** कहा गया है।

भावार्थ – यह भोक्ता सर्व-जीवात्मक तथा सर्व-प्रपंचात्मक प्राण तथा अग्नि है, यह भोक्ता ही उदित होता है। उक्त प्रकार वर्णित यह वस्तु ही परवर्ती ऋक्-मन्त्र में कहा गया है।

भाष्य – स एषो अत्ता प्राण: वैश्वानर: सर्वात्मा विश्वरूप: विश्व-आत्मत्वात् च प्राण: अग्नि: च स एव अत्ता उदयते उद्गच्छति प्रत्यहं सर्वा दिश: आत्मसात्-कुर्वन्। तदेतत् उक्तं वस्तु ऋचा मन्त्रेण अपि अभ्युक्तम्।।

भाष्यार्थ – वही (पिछले प्रकरण का) भोक्ता-प्राण, जो वैश्वानर या विराट् रूप से सर्वात्मा अर्थात् सभी प्राणियों की आत्मा है; जो विश्वरूप अर्थात् विश्व के सभी प्राणियों को और सबकी आत्मा होने से प्राण तथा अग्नि को अपना स्वरूप बनाते हुए, सारी दिशाओं को आत्मसात् करते हुए प्रतिदिन उदित होता है। यह जो कहा गया तत्त्व है, इसी बात को अगले मन्त्र में भी कहा गया है।।७।।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्। सहस्ररश्मि: शतधा वर्तमान: प्राण: प्रजानामुदयत्येष सूर्य:।।८।।

अन्वयार्थ – विश्वरूपम् सर्वरूप **हरिणम्** रश्मिवान् **जातवेदसम्** जातप्रज्ञ (सभी विषयों के ज्ञाता) **परायणम्** सभी प्राणों के आश्रय **ज्योति:** सभी प्राणियों के नेत्र-स्वरूप **एकम्** अद्वितीय **तपन्तम्** ताप-क्रिया करनेवाले सूर्य को (ब्रह्मवेत्ता लोग आत्मरूप से जानते हैं); **सहस्ररश्मि:** अनन्त किरणोंवाले **शतधा** (प्राणियों के भेद से) बहु रूपों में **वर्तमान:** विद्यमान **प्रजानाम्** (सभी) प्राणियों का **प्राण:** प्राण-स्वरूप **एष** यह **सूर्य:** सूर्य **उदयति** उदित होता है।

भावार्थ – सर्वरूप रश्मिवान् जातप्रज्ञ (सभी विषयों के ज्ञाता), सभी प्राणों के आश्रय, सभी प्राणियों के नेत्र-स्वरूप, अद्वितीय, ताप-क्रिया करनेवाले सूर्य को (ब्रह्मवेत्ता लोग आत्मरूप से जानते हैं); अनन्त किरणों वाले (प्राणियों के भेद से) बहु रूपों में विद्यमान (सभी) प्राणियों का प्राण-स्वरूप यह सूर्य उदित होता है।

भाष्य – विश्वरूपं सर्वरूपं हरिणं रश्मिवन्तं जातवेदसं जातप्रज्ञानं परायणं सर्वप्राणाश्रयं ज्योतिरेकं सर्वप्राणिनां चक्षु: भूतम् अद्वितीयं तपन्तं तापक्रियां कुर्वाणं स्वात्मानं सूर्यं सूरयो विज्ञातवन्तो ब्रह्मविद:।

भाष्यार्थ – ब्रह्म के ज्ञाताओं ने जान लिया था कि जो विश्वरूप अर्थात् सर्वरूप रश्मिवान है; जिसमें ज्ञान उत्पन्न हुआ है; जो समस्त प्राणों का परम आश्रय है; जो एकमात्र ज्योति के रूप में सभी प्राणियों का नेत्र है, जो एक अर्थात् अद्वितीय है और ताप देनेवाला है, वह सूर्य ही अपनी अन्तरात्मा है।

क: असौ यं विज्ञातवन्त:? सहस्र-रश्मि: अनेक-रश्मि: शतधा अनेकधा प्राणिभेदेन वर्तमान: प्राण: प्रजानाम् उदयति एष सूर्य:।।

वह कौन-सा तत्त्व था, जिसे जान लिया था? (यह कि) असंख्य रश्मियोंवाला, नाना प्रकार के प्राणियों के रूप में विद्यमान प्राण ही, जो सभी प्राणियों का जीवन है, वही सूर्य के रूप में उदित होता है।।८।। **(क्रमश:)**

अंगद : राम की प्रीति और नीति के चरम स्तम्भ

सन्त मैथिलीशरण, 'भाईजी'

संस्थापक अध्यक्ष, श्रीरामकिंकर विचार मिशन, ऋषिकेश

अंगद रामायण के वे पात्र हैं, जिनके पिता बालि का वध भगवान श्रीराम ने स्वयं किया और राम की अद्वितीय, विराट प्रीति और नीति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण अंगद ही बने। श्रीरामचरितमानस में वे अकेले ऐसे पात्र हैं, जिनकी बहुत बड़ी हानि श्रीराम के द्वारा हुई, पर उनके हृदय में तनिक भी राम के प्रति शरीर और संसार-बुद्धि नहीं आई।

यदि अंश रूप में भी शरीर-भाव आ जाता, तो अंगद कभी भी रावण जैसे कूटनीतिज्ञ की राजधानी लंका में जाकर श्रीराम के यश की दिव्य पताका को न फहरा पाते, श्रीराम के प्रति उनके अन्दर ईश्वरत्व का प्रवेश भी श्रीलक्ष्मण के द्वारा रोपित किया गया था।

वस्तुत: वे लक्ष्मणजी के भावों के अत्यन्त निकट थे। जब सुग्रीव को दण्ड देने श्रीलक्ष्मण किष्किन्धा गये थे, तब लक्ष्मण को क्रोधित देखकर अंगद लक्ष्मणजी के समक्ष आए और प्रणाम किया, तो श्रीलक्ष्मण ने अंगद की ओर करुणामय दृष्टि से देखा और लक्ष्मणजी ने युवा अंगद को अपनी अभय बाँह का स्पर्श देकर आशीर्वाद दिया था।

धनुष चढ़ाई कहा तब जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार।।
चरन नाई सिरु बिनती किन्ही।
लछिमन अभय बाँह तेहि दिन्ही।।

तात्पर्य यह कि लोगों को केवल लक्ष्मणजी का क्रोध दिखाई दे रहा था, जबकि उसी घटना में अंगद को लक्ष्मणजी की सन्तुलित दृष्टि दिखाई दी कि जिसका कोई अपराध नहीं है, वह बालिकुमार ही क्यों न हों, उसको प्रेम और विश्वास दिया जाना चाहिए। अंगद को इसी भाव की पुनरावृत्ति आगे चलकर लक्ष्मणजी के चरित्र में दिखाई दी। लक्ष्मण के प्रति श्रद्धा तब हुई, जब लंका से चरण प्रहार सहकर विभीषण भगवान राम के चरणों में आकर शरणागत हुए ही थे कि कुछ देर के पश्चात् रावण ने विभीषण और राम के बीच क्या हुआ, यह जानने के लिए शुक और सारन नामक दो गुप्तचर भेजे। वे श्रीराम के द्वारा किये व्यवहार को देखकर भक्त हो गये और अपना वैरभाव भूलकर जब आपस में राम के गुणों की चर्चा कर रहे थे, तब सुग्रीव के सैनिकों द्वारा वे राक्षस रूप में पहचान लिये गये। सुग्रीवजी, जो अंगद के चाचा थे, वे दोनों गुप्तचरों को दण्डित करने जा रहे थे, पर ज्योंहि उन गुप्तचरों ने कहा कि यदि तुमलोगों ने हमें मारा या दण्डित किया, तो तुम्हारे स्वामी राम का अपयश होगा और तुमको राम की शपथ है, जो तुम हमें मारोगे। राम के यश की बात सुनते ही लक्ष्मण ने अंगद की ही तरह उनको भी अपना लिया और जो विश्वास अंगद को दिया, वही शुक और सारन को दिया। बस, इस घटना को देखकर अंगद की शरणागति लक्ष्मण के चरणों में हो गई और वे श्रीलक्ष्मण की ही तरह राम के यश-पताका के दण्ड बन गये।

वस्तुत: अंगद अपने पिता बालि का वह परिष्कृत रूप हैं, जो शरीर से ऊपर शरीरी तत्त्व में स्थित हैं। इस निष्ठा के बिना वे रावण के द्वारा फूट डालने पर भी रामत्व में स्थित नहीं रह सकते थे। बालि में बल की प्रधानता थी और अंगद में विनय की प्रधानता थी। भक्ति में विनय ही प्रधान गुण होता है।

श्रीराम रावण के कल्याण के लिए अंगद को अपना दूत बनाकर सन्देश लेकर अकेले लंका में भेजते हैं। यह राम के विश्वासी स्वभाव की बहुत बड़ी विजय थी और अंगद का यह अलौकिक रूप मानस में तब सामने आया, जब वे लंका में जाकर उसके मंत्रिमण्डल के समक्ष राम के ईश्वरत्व को ओजस्वी स्वर में स्थापित कर रावण और उसकी सेना में एक क्रान्ति पैदा कर देते हैं। वे श्रीराम के विश्वास और कृपालु स्वभाव को बताकर भी उस सभा में रावण और राम के व्यक्तित्व में तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

रावण ने अंगद को कुपुत्र, कुलघालक कह दिया और यह भी कहा कि जन्म लेते ही तुम्हारी मृत्यु क्यों नहीं हो गई? तुम्हारे जैसा कुपुत्र उस वनवासी का दूत बनकर मेरी सभा में आया है। तुम निर्लज्ज हो। पर अंगद की निष्ठा

को रावण वैसे ही नहीं डिगा सका, जैसे वह अंगद के पैर को नहीं डिगा सका। अंगद ने रावण की भरी सभा में ललकार कर कह दिया – अरे मूर्ख रावण! तू अपनी इस चतुराई को छोड़कर उन श्रीराम का भजन कर जिनको हृदय में लाये बिना जीवन और जन्म व्यर्थ होता है, तू अपनी चतुराई से अपना और अपने कुल का नाश कर रहा है। तू मुझमें राम के प्रति भेद पैदा करना चाह रहा है। वह तो तब संभव होता, जब मेरे हृदय में श्रीराम का वास न होता –

सुन सठ भेद होइ मन जाके।
श्री रघुबीर हृदय नहीं जाके।।

जब रावण ने अंगद की शरीरवादी वृत्ति को उभारने के लिए कहा कि तेरे पिता का क्या समाचार है? वे ठीक तो हैं न? तब अंगद ने उसके अहंकार और अज्ञानयुक्त कूट नीति पर तीखा प्रहार करते हुए कहा कि दस दिन बाद तो तुम स्वयं उनके पास जाने ही वाले हो, तो वहीं गले से लगाकर उनका हाल पूछ लेना –

दिन दस गएँ बालि पहि जाई।
बूझेहु कुसल सखा उर लाई।।

तू राम को मनुष्य मानता है? और गंगा को नदी बोलता है? अरे पाखण्डी! राम की भक्ति किसी लाभ के लिए नहीं की जाती है, बल्कि राम की भक्ति से बड़ी कोई उपलब्धि नहीं है। भक्ति स्वयं उपलब्धि है। राम की भक्ति से बढ़कर भी कोई लाभ है क्या?

लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा?

राम-भक्ति की जैसी निष्ठा का दर्शन अंगद में मिलता है, उससे यह पता चलता है कि जैसे लक्ष्मणजी भगवान की यश-पताका को फहरानेवाले दण्ड हैं, वैसे ही उनके शिष्य अंगद भी राम की ईश्वरीय पताका को फहरानेवाले दूसरे दण्ड हैं। श्रीराम ने अंगद को अकेले भेजकर अपना विश्वास अंगद के प्रति दिखाया और रावण की सभा में पैर रोपकर अंगद ने राम के प्रति अपनी भक्ति और सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को सार्वजनिक करते हुए कहा – रावण! तुम या तुम्हारी सभा का कोई भी सदस्य यदि मेरा पैर उठा देता है, तो मैं वचन देता हूँ कि श्रीराम सीताजी को हार कर अयोध्या वापस चले जायेंगे। क्या रावण की सभा में कोई एक भी ऐसा था, जो रावण की ओर से राम के यहाँ जाकर यह बोल सके? राम जिसको अपनाते हैं, उसमें कितना विश्वास भर देते हैं, वह अंगद ने सुस्पष्ट कर दिया।

अंगद की भक्ति का एक और चित्र तब सामने आता है, जब रामराज्य की स्थापना के बाद छः महीने बीत गये और सारे बन्दर अपनी सुध-बुध भूलकर अयोध्या के सुख साम्राज्य का उन्मुक्त उपभोग करते हुए आनन्दित हैं। भगवान श्रीराम ने अचानक एक समारोह आयोजित किया और सब बन्दरों को बिदा कर उन्हें उनके राज्य किष्किन्धा भेजने का मन बना लिया। सुग्रीव के सहित सारे बन्दरों का श्रीराम सम्मान करते हैं और बहुत प्रकार के आभूषण और भेंट देकर सबको विदा कर देते हैं। अन्त में यही बालि-पुत्र अंगद अतिशय भावुक होकर भगवान के चरणों में गिर गये और भगवान की अत्यन्त भावपूर्ण स्तुति करने लगे – हे प्रभु आप सर्वज्ञ हैं, कृपा के समुद्र हैं, अशरण के शरण हैं। आपकी सेवा के अतिरिक्त मेरा अब घर में क्या कार्य है? आप कृपा कर मुझे जाने के लिए मत कहिए। तब भगवान ने अपने कण्ठ की माला उतारकर अंगद को पहना दी और बहुत प्रकार से साम-दाम, दण्ड-भेद, प्रेम, सेवा, तितिक्षा, समाज और परिवार के प्रति व्यक्ति के दायित्व को समझाकर विदा कर दिया।

रास्ते में हनुमानजी ने सब बन्दरों को कुछ दूर तक पहुँचाकर वापस आने के बाद अंगद की मनोदशा का प्रभु के समक्ष जब वर्णन किया, तो भगवान के नेत्रों से प्रेमाश्रु छलक आये। अंगद मार्ग में भगवान का ध्यान कर रहा है – श्रीराम मुझे कैसे देखते थे! वे कैसे मुझसे बोलते थे! कैसे मुझे गले लगा लेते थे! यही सोच-सोच कर उसका शरीर पुलकित हो रहा था। हनुमानजी ने कहा कि प्रभु वह जा तो रहा था किष्किन्धा की ओर, पर मन उसका आपके चरणों में था। वह चाह रहा था कि शायद प्रभु मुझे पुनः बुला लेंगे और रोक लेंगे।

पर श्रीराम का यह अतुल्य वात्सल्य था, जब वे अंगद को परिवार के साथ रहने का अवसर देते हैं। वे यह मानते हैं कि मेरे भक्त में यदि कोई कामना आये, उसको यदि कहना पड़ेगा, तो वह सकाम कहलायेगा और मैं भेज दूँगा, तो भले ही मेरा यश कम हो जाये, लोग मुझे कठोर कहें कि राम कितने कठोर हैं कि बेचारा अंगद रोता रहा और राम ने जबरन विदा कर दिया। पर मेरे भक्त पर यह कलंक न लगे कि भगवान की सेवा छोड़कर घर चला गया।

शेष भाग पृष्ठ ५२२ पर

पुरुषार्थ से अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करें

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

श्रीमाँ सारदा देवी कहती हैं, 'कर्म ही हमारे सुख-दुःख का कारण है। यहाँ तक कि ठाकुर को भी कर्मफल का भोग करना पड़ा था। एक बार उनके अग्रज सन्निपात की अवस्था में पानी पी रहे थे। ठाकुर ने देखा तो झपटकर गिलास छीन लिया। वे थोड़ा-सा ही पी पाये थे। अग्रज ने रुष्ट होकर कहा, "तूने मुझे पानी नहीं पीने दिया। तू भी ऐसा ही भुगतेगा। तुझे भी गले में ऐसी ही पीड़ा होगी।" ठाकुर बोले, 'भैया, मैंने तुम्हें सताने के लिए तो ऐसा नहीं किया। तुम बीमार हो। पानी पीने से तुम्हारी पीड़ा बढ़ जाती, इसीलिए मैंने गिलास छीन लिया। तुमने मुझे यों ही श्राप दे दिया?" अग्रज ने रोते हुए कहा, "भाई, मैं नहीं जानता कि क्यों मेरे मुँह से ऐसे शब्द निकल गये। उनका फल तो होगा ही।" अपनी बीमारी के समय ठाकुर ने मुझसे कहा था, "मुझे उस श्राप के कारण गले में कैंसर की यह बीमारी मिली है। तुम लोगों को अब भुगतना नहीं पड़ेगा। मैंने तुम सबके बदले भोग लिया।" उत्तर में मैं बोली, "अगर ऐसी बात तुम्हारे साथ घटती है, तब फिर साधारण आदमी कैसे जीवित बचेगा?" ठाकुर ने कहा, "मेरे अग्रज धर्मात्मा थे। उनके शब्द सत्य होंगे ही। क्या ऐरे-गैरे किसी की भी बात यों सच हो सकती है?" कर्म का फल अनिवार्य है, पर भगवान के नाम के प्रभाव से उसकी तीव्रता कम की जा सकती है। यदि तुम्हारे भाग्य में पैर कटना बदा हो, तो कम से कम पैर में काँटा चुभकर रह जाएगा।'[१] श्रीमाँ सारदा देवी की उपरोक्त बातों से कर्म-भाग्य का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है, तथापि हम भाग्य विषय पर कुछ विश्लेषण करेंगे।

भाग्य और पुरुषार्थ क्या है?

कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि भाग्य वह फल है, जो पहले से निर्धारित है और उसे नहीं बदला जा सकता। अधिकांश लोग अपनी सफलता का सेहरा अपने संघर्ष और प्रयासों को देते हैं, वहीं असफलता मिलने पर भाग्य को दोष देते हैं। पर वास्तव में भाग्य है क्या? भाग्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – एक सौभाग्य और दूसरा दुर्भाग्य। जब हमें अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं, तो उसे हम सौभाग्य का नाम देते हैं, वहीं जब कष्टदायक परिस्थितियाँ हमारे सामने आये, तो उसे हम दुर्भाग्य का नाम दे देते हैं। हम जो कर्म करते हैं, उसे पुरुषार्थ कहा जाता है। जो फल हमें प्राप्त होता है, उसे भाग्य कहते हैं। इस प्रकार पुरुषार्थ वर्तमान है, परन्तु भाग्य में भूत और भविष्य की कड़ियाँ बहुत दूर तक विस्तृत होती हैं। अतीत में किए हुए कर्म और भोग भविष्य की गोद में होते हैं, वहीं भविष्य में उन कर्मों के प्रभाव आकाश की भाँति अदृश्य रूप से समाये होते हैं। भाग्य की व्याख्या कर पाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि इसका कोई नियम नहीं मिल पाता, पर कर्म के द्वारा भाग्य का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है तथा उसकी व्याख्या भी की जा सकती है।

संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म और क्रियमाण कर्म

ऋग्वेद के तीन शब्द कर्म-भाग्य के रहस्य को समझाते हैं, वे हैं – संचित कर्म, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म। वे कर्म जो हम पूर्व में कर चुके हैं उन्हें संचित कर्म कहते हैं। वे कर्म जो अब फल दे रहे हैं, उन्हें प्रारब्ध कहते हैं। वे कर्म जो हम वर्तमान में कर रहे हैं, उसे क्रियमाण कर्म कहते हैं। वस्तुत: इन तीनों के द्वारा कर्म और भाग्य की एक गुत्थी बन जाती है। परन्तु इसी गुत्थी के द्वारा कर्म-भाग्य का रहस्य समझाया जा सकता है। क्योंकि जो कर्म हम पूर्व में कर चुके हैं, वे संचित कर्म प्रारब्ध के रूप में हमारे सामने परिस्थितियों का निर्माण करते हैं और उन परिस्थितियों में हम जो कर्म करते

हैं, वे संचित कर्म बनकर हमारे भविष्य का प्रारब्ध निर्माण करते हैं। यह चक्र इसी प्रकार चलता रहता है। यदि हमने अच्छे कर्म किए हैं, तो उनके परिणाम भी अच्छे होंगे और यदि हमारे कर्म बुरे हैं, तो हमें बुरे परिणाम ही प्राप्त होंगे। अत: कर्म-भाग्य का यह सिद्धान्त हमें अच्छे कर्म करने को प्रेरित करते हैं। इस संदर्भ में श्रीरामकृष्ण देव कुछ अनुपम उदाहरण देते हुए कहते हैं, 'जिसके कर्म का जैसा भोग है, उसे वैसा ही भोगना पड़ता है। संस्कार, प्रारब्ध आदि बातें माननी ही पड़ती हैं। ... बात यह है कि सुख-दु:ख देह के धर्म हैं। कविकंकण-चण्डी में लिखा है कि कालूवीर को कैद की सजा हुई थी और उसकी छाती पर पत्थर रखा गया था। कालूवीर भगवती का वरपुत्र था फिर भी उसे यह दु:ख भोगना पड़ा। देहधारण करने से ही सुख-दु:ख का भोग करना पड़ता है। श्रीमन्त भी तो बड़ा भक्त था। उसकी माँ खुल्लना को भगवती कितना अधिक चाहती थीं! पर देखो, उस श्रीमन्त पर कितनी विपत्ति पड़ी! यहाँ तक कि वह श्मशान में काट डालने के लिए ले जाया गया। एक लकड़हारा परम भक्त था। उसे भगवती के साक्षात् दर्शन हुए, उन्होंने उसे खूब चाहा और उस पर अत्यन्त कृपा की, परन्तु इतने पर भी उसका लकड़हारे का काम नहीं छूटा! उसे पहले की तरह लकड़ी काटकर ही रोटी कमानी पड़ी। कारागार में देवकी को चतुर्भुज शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान् के दर्शन हुए, पर तो भी उनका कारावास नहीं छूटा।''[२]

भाग्य, दैवीकृपा और पुरुषार्थ

दैवीकृपा को प्राप्त करने का सौभाग्य भी उन्हें ही प्राप्त होता है, जो पुरुषार्थ की लम्बी यात्रा तय करते हैं। दैवीकृपा कुछ उसी प्रकार है, जैसे वृक्ष पर फल तो हैं, पर उसे खाने के लिए तोड़ने का पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता है और जो फल तोड़ लेते हैं, वे फल खाने का भाग्य प्राप्त करते हैं।

सुभाषित कहते हैं -

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति, कोऽत्र दोषः।।[३]

अर्थात् लक्ष्मीजी उन पुरुषसिंहों से प्रसन्न रहती हैं, जो उद्यमशील हैं। दैववादी तो कापुरुष होते हैं। भाग्य के भरोसे न रहकर अपने बलबूते पर पुरुषार्थ करो। फिर प्रयासों के बावजूद यदि सफलता न मिले, तो फिर तुम्हारा कोई दोष नहीं।

वस्तुत: अपने समस्त प्रयासों के बाद होनेवाली शरणागति निष्क्रियता नहीं कही जाएगी, बल्कि ऐसी शरणागति के द्वारा दैवीकृपा अवश्य प्राप्त होती है।

शास्त्र-वाणी

गीता, उपनिषद आदि विभिन्न शास्त्रों में कहीं पर भी भाग्य की बात नहीं कही गई है, बल्कि सभी स्थानों पर पुरुषार्थ की बात ही कही गई है। उस पुरुषार्थ के द्वारा ही हमारे भाग्य का निर्माण होता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।[४]

अर्थात् तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

गीता निष्क्रियता का पाठ नहीं पढ़ाती, बल्कि समस्त परिस्थितियों में समत्व का भाव रखने का और अपने कर्म को अनासक्त होकर करने का उपदेश देती है।

वहीं रामचरितमानस में तुलसीदासजी कर्म का महत्त्व बतलाते हुए लिखते हैं -

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।[५]

अर्थात् उन्होंने (ईश्वर ने) विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है।

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तपबल बिष्नु सकल जग त्राता।।
तपबल संभु करहिं संघारा।
तपबल सेषु धरइ महिभारा।।[६]

अर्थात् तप के बल से ही ब्रह्मा संसार को रचते हैं और तप के बल से ही विष्णु सारे जगत का पालन करते हैं, तप के बल से ही शम्भु (रूद्र रूप से) जगत का संहार करते हैं और तप के बल से ही शेषजी पृथ्वी का भार धारण करते हैं।

भाग्य और ज्योतिष

ज्योतिषी के बारे में एक प्राचीन कथा है। एक राजा के यहाँ जाकर एक ज्योतिषी ने कहा, 'छह महीने में आपकी

मृत्यु हो जाएगी।'' राजा डरकर हतबुद्धि हो गया और भयवश वहीं तत्काल प्राय: मरणासन्न हो गया। किन्तु उसका मंत्री चतुर व्यक्ति था। उसने राजा से कहा कि ये ज्योतिषी मूर्ख होते हैं। उस पर राजा का विश्वास नहीं जमा। इससे मंत्री को इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न सूझा कि वह ज्योतिषी को राजप्रासाद में पुन: बुलाये और राजा को समझाये कि ये ज्योतिषी मूर्ख होते हैं। तब उसने उससे पूछा कि क्या तुम्हारी गणना सही है। ज्योतिषी ने कहा कि कोई गलती नहीं हो सकती। परन्तु मंत्री को संतुष्ट करने के लिए उसने पूरी गणना फिर से की और तब कहा कि वह बिल्कुल ठीक है। राजा का चेहरा फीका पड़ गया। मंत्री ने ज्योतिषी से पूछा, ''आपकी मृत्यु कब होगी, इसके बारे में आप क्या सोचते हैं?' 'बारह वर्ष में', उत्तर मिला। मंत्री ने तलवार खींच ली और ज्योतिषी का सिर धड़ से अलग कर दिया और राजा से कहा, इस मिथ्यावादी को तो आप देख रहे हैं? यह इसी क्षण मर गया।''[७]

कुछ लोग भाग्य और ज्योतिष पर आँखें मूँदकर विश्वास कर लेते हैं और क्या कभी हमने इसकी विवेचना की है? यदि हम किसी डॉक्टर के पास जाएँ, तो हम उसकी शिक्षा और अनुभव का विश्लेषण करके ही उनके पास जाते हैं। परन्तु ज्योतिष के क्षेत्र में हम जिस किसी के सामने अपना हाथ दिखाने लग जाते हैं। एक बार एक ज्योतिषी ने रामकृष्ण संघ के एक संन्यासी को पत्र लिखकर अपने जीवन की समस्याएँ बताईं। उसने लिखा था -

परम पूज्य महाराज,

मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

मैं अपनी पुत्री के भविष्य को लेकर बहुत चिन्तित हूँ। उसका व्यवहार परिवार में संतोषजनक नहीं है। वह बहुत आलसी है। ज्योतिष के द्वारा मेरी आय बहुत अच्छी है, परन्तु वह उन पैसों का बहुत दुरुपयोग करती है। उसे अपने भविष्य की बिल्कुल भी चिन्ता नहीं है। कृपया मेरी समस्या का कोई निराकरण बताएँ।

प्रार्थी

अमुक

पता – अमुक, ज्योतिषाचार्य, ज्योतिष कार्यालय,...

(पते के नीचे एक सूचना लिखी थी)

सूचना : यहाँ सभी प्रकार के ज्योतिष, योग आदि की सलाह दी जाती है। समस्याओं के निराकरण के लिए रुद्राक्ष व अँगूठी आदि की भी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

क्या आप ऐसे ज्योतिषाचार्यों पर विश्वास करेंगे? ज्योतिष भी एक विद्या है, पर इसके जाननेवाले विरले ही हैं। किसी क्षण के लिए यदि हम यह मान भी लें कि ज्योतिष के द्वारा भाग्य जाना जा सकता है, तो भी उस व्यक्ति को उस भाग्य तक पहुँचने के लिए संघर्ष तो करना ही पड़ेगा। अर्थात् भाग्य में लिखे होने पर भी उसकी प्राप्ति के लिए संघर्ष अत्यन्त आवश्यक है। मेरे भाग्य में तो ऐसा लिखा ही है, ऐसा सोचकर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से किसी भी व्यक्ति का भाग्योदय नहीं हो सकता।

आपके प्रश्न और कुछ तार्किक उत्तर

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। यहाँ व्यक्ति की मानसिकता वैज्ञानिक चिन्तन की है। वह प्रत्येक तथ्यों को विज्ञान से तौलकर लेना चाहता है। आइए, आपके कुछ युक्तिपूर्ण प्रश्नों के उत्तर खोजें।

कुछ लोगों का यह मत हो सकता है कि सब कुछ भाग्य पर ही निर्भर होता है, कर्म पर नहीं। पर एक साधारण उदाहरण के द्वारा हम पुरुषार्थ और भाग्य की विवेचना कर सकते हैं। यदि किसी ने यह कहा कि अमुक छात्र का परीक्षा फल सर्वश्रेष्ठ होगा और अमुक छात्र का परीक्षा फल अच्छा नहीं होगा। यदि सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करनेवाला छात्र परीक्षा में ही न बैठे, तो क्या वह सर्वश्रेष्ठ स्थान पा सकेगा? जिस छात्र के परिणाम अच्छे न होने की भविष्यवाणी की गई थी, यदि वह बहुत अच्छे ढंग से पढ़ाई करके परीक्षा देता है, तो क्या वह अनुत्तीर्ण हो सकता है? इस प्रकार हम कर्म के द्वारा भाग्य का निर्माण होने की पुष्टि कर सकते हैं।

अगला प्रश्न यह हो सकता हैं कि एक व्यक्ति गरीब परिवार में जन्म लेता है और दूसरा व्यक्ति अमीर के घर में तो क्या यह बिना कर्म किए भाग्य का फल नहीं है? परन्तु पुनर्जन्मवाद के द्वारा हम इसकी पुष्टि कर सकते हैं। जैसा कि शास्त्र कहते हैं – संचित कर्म अर्थात् हमारे पूर्व-पूर्व जन्म में किए हुए कर्मों के फल के द्वारा हमारा प्रारब्ध निश्चित होता है, जिसे हम भाग्य कहते हैं। कुछ लोग पुनर्जन्मवाद को स्वीकार नहीं करना चाहते, परन्तु वर्तमान में ऐसे विशेष उदाहरण उपस्थित हैं, जब कुछ लोगों को उनके पूर्वजन्म

की स्मृतियाँ हो आयीं और वे सत्य पायी गयीं। इस प्रकार आज मनोविज्ञान इस तथ्य को मानने पर बाध्य है।

यदि हम पुनर्जन्मवाद को अस्वीकार कर दें और प्रश्न करें कि किसी व्यक्ति का जन्म तो गरीब परिवार में होता है और किसी का अमीर के घर में, तो क्या यह भाग्य का खेल नहीं है? गरीब परिवार में जन्म लेने के बाद भी ऐसा हुआ है कि गरीब व्यक्ति अपने अथक प्रयासों के द्वारा सफल और महान हुए हैं और अमीर व्यक्ति अपनी असावधानी, अकर्मण्यता और भाग्यवादी होने के कारण भिखारी बने हैं। अर्थात् मात्र जन्म ले लेने से कोई व्यक्ति सफल या असफल नहीं हो जाता, बल्कि उसके स्वयं के प्रयास उसे शिखर तक पहुँचाते हैं।

कुछ लोगों का यह भी प्रश्न हो सकता है कि किसी क्षेत्र में बहुत से लोगों ने प्रयास किया और सफलता किसी एक या दो व्यक्ति को ही प्राप्त हुई। इस विषय में यह तो स्पष्ट है कि श्रेष्ठ तो बहुत से लोग हो सकते हैं, पर सर्वश्रेष्ठ तो किसी एक को ही कहना पड़ेगा। महाविद्यालय या ओलम्पिक खेलों में या अन्य किसी क्षेत्र में भी सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करनेवाला व्यक्ति एक ही होता है। इसके पीछे यदि हम झाँक कर देखें और विवेचना करें, तो पाएँगे कि उनके प्रयास, उनकी शारीरिक और मानसिक क्षमताएँ, ये सभी उसकी सफलता के पीछे जुड़ी होती हैं। इंजीनियरिंग (यांत्रिकी) या मेडिकल (चिकित्सा विज्ञान) या अन्य किसी क्षेत्र में बहुत से विद्यार्थी प्रवेश पाते हैं, पर कुछ गलत संगति के कारण, कुछ नशे के कारण, कुछ किसी के प्रेम में पड़कर वस्तुत: किसी के आकर्षण में पड़कर अपने लक्ष्य से दूर हो जाते हैं और उतना परिश्रम नहीं कर पाते, जितना आवश्यक होता है। अपने प्रयासों अर्थात् पुरुषार्थ के बल पर ही हम श्रेष्ठ या सर्वश्रेष्ठ हो सकते हैं। आज तक किसी परीक्षा के सफल विद्यार्थी ने यह नहीं कहा कि वह भाग्य के बल पर सर्वश्रेष्ठ हुआ है। पुरस्कार देने के पीछे यही कारण है कि किसी व्यक्ति के पुरुषार्थ के कारण उसे वह पुरस्कार दिया गया है, अन्यथा भाग्य के द्वारा तो किसी को भी वह पुरस्कार दिया जा सकता था। यदि हम तर्क के द्वारा मात्र भाग्य को ही सब कुछ मान लें, तो भी हम किसी विशेष सिद्धान्त पर स्थिर नहीं हो सकते। वहीं कर्म अर्थात् पुरुषार्थ के सिद्धान्त पर हम अपने तर्क की पुष्टि कर सकते हैं।

उपसंहार

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''संस्कृत में कहावत है – जो कापुरुष और मूर्ख है, वह कहता है, यह भाग्य है। लेकिन वह बलवान पुरुष है, जो खड़ा हो जाता है और कहता है, 'मैं अपने भाग्य का निर्माण करूँगा।' जो लोग बूढ़े होने लगते हैं, वे भाग्य की बातें करते हैं। साधारणत: जवान आदमी ज्योतिष का सहारा नहीं लेते। हम लोग ग्रहों के प्रभाव में हो सकते हैं, लेकिन इसका हमारे लिए अधिक महत्त्व नहीं है। बुद्ध का कहना है, 'जो लोग नक्षत्र की गणना या उस प्रकार की कला और अन्य मिथ्या-प्रपंचों से जीविकोपार्जन करते हैं, उन्हें दूर रखना चाहिए।' और उनको इसका यथार्थ ज्ञान होना ही चाहिए, क्योंकि आज तक जितने हिन्दू जन्में हैं, उनमें वह सबसे महान थे। नक्षत्रों को आने दो, हानि क्या है? यदि कोई नक्षत्र मेरे जीवन में उथल-पुथल करता है, तो उसका मूल्य एक कौड़ी भी नहीं है। तुम अनुभव करोगे कि ज्योतिष और ये सब रहस्यमयी वस्तुएँ बहुधा दुर्बल मन की द्योतक हैं। इसलिए जब हमारे मन में इनका उभार हो, तब हमें किसी डॉक्टर के यहाँ जाना चाहिए, उत्तम भोजन ग्रहण करना चाहिए और विश्राम करना चाहिए।''[८]

जो लोग पूरी निष्ठा और लगन से कार्य नहीं करते, वे ही भाग्य का रास्ता देखते हैं और जो मेहनत करते हैं, वे अपना भाग्य बदल लेते हैं। यदि भाग्य से ही व्यक्ति महान या सफल हो जाता, तो वैसे लोगों की कथा पढ़ने सुनने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। तब तो लोग भाग्य का ही पाठ पढ़ते। व्यक्ति अपना भाग्य या अपनी सफलता अपने संघर्ष के द्वारा सिद्ध करता है। यदि हमें ऐसा लगे कि भाग्य हमारा साथ नहीं दे रहा है, तो हमें यह अवश्य सोच लेना चाहिए कि हमारे प्रयासों में कुछ कमी रह जा रही है। पुरुषार्थ और भाग्य के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है -

जिस ईश्वर ने मेरे हाथों में गिन-गिनकर उत्कर्ष लिखा।
उस ईश्वर ने ही मेरे पैरों में चुन-चुन कर संघर्ष लिखा।।

OOO

सन्दर्भ सूत्र – १. माँ की बातें पृष्ठ ९९-१००, **२.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत १/२८१ (१९ अगस्त १८८३), **३.** पंचतंत्र /२ मित्रसंप्राप्ति:/१४०, **४.** भगवद्गीता २/४७, **५.** रामचरितमानस/ अयोध्या काण्ड २१८/४, **६.** रामचरितमानस/ बालकाण्ड ७२/३-४, **७.** विवेकानन्द साहित्य ९/१५६, **८.** विवेकानन्द साहित्य ९/१५५.

गीतातत्त्व-चिन्तन (११)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

एक तीसरी कथा श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे। भगवान शेषशायी हैं, अचानक उठते हैं। लक्ष्मीजी बड़ी ही अप्रतिभ हो जाती हैं। वे एकदम लेटे हुए थे, उठे और जोरों से कहीं की ओर चले। पर थोड़ी ही देर में हँसते-हँसते वापस लौट आते है और फिर से लेट जाते हैं। लक्ष्मीजी ने धीरे-धीरे पैरों को सहलाते हुए पूछा, ''भगवन्, आपके इस प्रकार अचानक उठने का कारण नहीं समझ सकी। क्या कारण है आप तुरन्त उठे और फिर थोड़ी ही देर बाद हँसते हुए लौट आए।'' उन्होंने कहा, एक भक्त पर विपदा आ गयी थी। वह रास्ते से जा रहा था। वह पागल के समान दिखाई देता था। लोग तो उसके भीतर के भाव को नहीं जानते थे और उसे पागल समझ लिया। लड़कों की टोलियाँ उस पर पत्थर बरसा रही थी। इसलिए मैं उसकी रक्षा करने के लिए भागा। लक्ष्मीजी ने पूछा, तो फिर आप इतनी जल्दी वापस कैसे चले आए? क्या आपने अपने भक्त की रक्षा कर दी? भगवान कहते हैं, ''जब मैं पहुँचा, तो देखा कि भक्त ने अपनी रक्षा करने के लिए स्वयं पत्थर उठा लिया है। मैंने सोचा कि अब मेरी कोई आवश्यकता नहीं है, इसीलिए मैं तुरन्त वापस आ गया।''

अब इस कथा में निहित गूढ़ तात्पर्य को ग्रहण करना है। तात्पर्य यह है कि भगवान कितनी तीव्रता होने पर आते हैं।

पुरुषार्थ का कितना प्रयोजन?

कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि इस प्रकार की कथा के अनुसार हमारे पुरुषार्थ का कोई प्रयोजन है अथवा नहीं? क्या भगवान ही हमारे लिए सब कुछ करेंगे? यदि हमने अपनी रक्षा करने के लिए किसी प्रकार का पुरुषार्थ किया, तो भगवान नहीं आएँगे, ऐसा कुछ इस कथा से ध्वनित होता है। इसीलिए लोग प्रश्न करते हैं। इसी कथा को ले लीजिए, भक्त ने अपनी रक्षा करने के लिए पत्थर उठाया और भगवान वापस चले गये। इसका अर्थ यह हुआ कि हर अवस्था में, जैसी अवस्था हमारी है, भगवान के ऊपर छोड़ देनी चाहिए। यदि हम छोड़ देते हैं, तो कभी-कभी ऐसा लगता है कि भगवान हमारी मदद के लिए नहीं आ रहे हैं। तब हमें क्या करना चाहिए? यह एक प्रश्न बहुत-से लोगों के मन में उठा करता है। इसका उत्तर भी है। उत्तर यह है कि जब तक भगवान पर पूरा भरोसा नहीं हो जाता, जैसा यहाँ पर कहा गया – जो अनन्य रूप से मेरा चिन्तन करते हैं या नित्य मेरे साथ युक्त होते हैं, जब तक नित्ययुक्तता का भाव जीवन में नहीं है, अनन्य चिन्तन जब तक नहीं है, जब तक अपने पौरुष और बल का सहारा है, तब तक तो मनुष्य अपने पौरुष और बल के सहारे ही चलेगा। यह जो अवस्था है, इस अवस्था को जबरदस्ती लाया नहीं जा सकता। जब मनुष्य ईश्वर को अपना एकमात्र रक्षक मान लेता है, तब जीवन में धीरे-धीरे इन अनुभूतियों को वह स्वयं प्रत्यक्ष देखता जाता है।

एक दूसरी कथा है। शिष्टजनों में यह कथा प्रचलित है। एक बहुत अच्छे भक्त थे। उन्होंने गीता का यह श्लोक पढ़ा। उन्होंने पहले सुना और फिर गीता का यह श्लोक पढ़ा, तो

उन्हें ऐसा लगा कि भगवान की वाणी कभी मिथ्या होती नहीं, वे ही योग और क्षेम का भार वहन करते हैं। इस भाव से वे अधिकाधिक उन्हीं की उपासना और उन्हीं के चिन्तन में डूब गये। एक दिन उन्होंने सुना कि घर के बच्चे बहुत जोरों से रो रहे हैं। पूछने पर पता चला कि घर में खाने के लिए अन्न नहीं है। पत्नी बारम्बार उनसे उपार्जन के लिए आग्रह करती है। परन्तु वे यही कहा करते थे कि भगवान ही योग और क्षेम का वहन करते हैं। गीता में उन्होंने अर्जुन के समक्ष प्रतिज्ञा की है, फिर अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह वे कैसे नहीं करेंगे? इस प्रकार वे भगवान का ध्यान और भजन करते हुए निश्चिन्त रहा करते थे। पर उस दिन बच्चों का बिलखना उनसे नहीं सहा गया। वे मन-ही-मन विचार करते हैं – सम्भवत: गीता में ये जो श्लोक है, वह भगवान के मुख की वाणी नहीं है। यह मूल श्लोक नहीं है। बल्कि क्षेपक के रूप में किसी व्यक्ति ने उस श्लोक को वहाँ जोड़ दिया है। यह क्षेपक है। कोई ग्रन्थ लिखा गया और बाद में कोई उसमें अपनी ओर से जोड़ देता है, उसको कहते हैं क्षेपक। उस समय की प्रचलित मान्यता के अनुसार उन्होंने हल्दी से उस श्लोक पर लेपन कर उसे मिटा दिया।

ऐसा करके वे बाहर चले जाते हैं। कुछ समय ३-४ घण्टे बीतने पर जब वे घर लौटते हैं, तो उन्होंने देखा कि उनके दो छोटे-छोटे बच्चे हाथ में मिठाई लेकर नाचते हुए खा रहे हैं। उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ। जब घर में भीतर आए, तो उन्होंने देखा कि कई महीनों का भोजन का सामान वहाँ रखा हुआ है। उन्होंने पत्नी से पूछा, ''अरे, तुम भी विचित्र हो! कुछ देर पहले कह रही थी कि घर में खाने को कुछ नहीं है और अभी इतना सामान दीख रहा है। पत्नी ने कहा – अरे, अभी-अभी तो १४-१५ साल की उम्र का एक लड़का आकर दे गया। उसने कहा कि आपने यह सब भिजवाया है। तब वे सोच में पड़े। इसके बाद पूछते हैं कि वह लड़का कैसा था? लड़का कैसा था, यह तो नहीं मालूम, पर इतनी बात दिखाई देती थी कि उसका जो निचला ओंठ था, वह पीला-पीला था। ऐसा लगता था कि उसने हल्दी पोत रखी हो। यह सुनकर भक्त की आँखों से आँसू की धारा बहने लगी, क्योंकि गीता साक्षात् भगवान के मुख से निकली है। भक्त ने श्लोक को क्षेपक समझकर वहाँ हल्दी पोत दी थी, इसलिए उसको लगा कि भगवान के ओंठों पर भी हल्दी उसने पोत दी। उसमें विश्वास की जो कमी आई थी, उसके लिए वह पश्चात्ताप करता है और कहता है, ''प्रभु, तुम मुझे क्षमा करो।''

तात्पर्य यह है ये कथाएँ कुछ ऐसी हैं, जो हमें यह बतलाती हैं कि विश्वास हमें कहाँ तक होना चाहिए। यदि इतना तीव्र विश्वास हो गया, तो सब कुछ भार भगवान वहन करते हैं, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं। पर मनुष्य विश्वास उतना कर नहीं पाता। योग-क्षेम की अपेक्षा रखता है, तो इस डाँवाडोल में उसके विश्वास की भी हानि होती है। इसीलिए 'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां' का जो विशेषण लगाया गया कि जो अनन्य रूप से मेरा चिन्तन करता है, यह जान करके अर्जुन, कि मेरे सिवाय उसका दूसरा कोई आलम्बन है ही नहीं, मैं ही एकमात्र भरोसा हूँ, मैं ही उसका एकमात्र पौरुष हूँ, मैं ही उसकी शक्ति हूँ। जिस समय वह पुरुषार्थ भी करता है, तो यही मानकर करता है कि प्रभु की कृपा से यह पुरुषार्थ हो रहा है, ऐसा भक्त अपने शरीर की हर क्रिया में, ईश्वर की इच्छा को ही देखता है। वह यह मानता है कि भगवान ही मुझसे यह करा ले रहे हैं। किसी प्रकार का उसने कर्म किया, तो उसमें भी ईश्वर की इच्छा को देखता है और इस प्रकार उनके साथ नित्य संयुक्त रहता है।

भगवान यह कहते हैं कि अच्छे में और बुरे में, शुभ और अशुभ में जो भगवान का इंगित देखता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि जीवन में अशुभ आ रहा है, उस समय हम भगवान का इंगित पकड़ नहीं पाते। उस समय हमें ऐसा लगता है कि यह भगवान तो नहीं कर रहे हैं। यदि भगवान हम पर इतने कृपालु हैं, तो जीवन में अशुभ के क्षण क्यों आना चाहिए? यह मानो विश्वास की हानि है। यह कहना चाहिए कि विश्वास की कमी है। इसीलिए हमारे भीतर इस तरह के द्वन्द्व पैदा होते हैं। भगवान कहते हैं, अर्जुन, जो मुझ पर पूरी तरह से आश्रित हो जाता है, मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि उसके योग और क्षेम का मैं वहन करता हूँ।

भगवान की विधिपूर्वक उपासना

अन्य देवताओं को श्रद्धा से पूजने का अर्थ

फिर इसके बाद वे कहते हैं –

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता:।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।२३।।

कौन्तेय (हे अर्जुन!) श्रद्धया (श्रद्धा से) अन्विता: (युक्त) ये (जो सकाम) भक्ता: (भक्तगण) अन्यदेवता: यजन्ते (दूसरे

देवताओं को पूजते हैं) ते अपि माम् एव (वे भी मुझे ही) अविधिपूर्वकम् (अविधिपूर्वक) यजन्ति (पूजते हैं)।

– "हे अर्जुन! श्रद्धा से युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मुझे ही अविधिपूर्वक पूजते हैं।"

पहले प्रसंग चला था, जिसमें भगवान ने कहा था – अर्जुन, लोग बहुत प्रकार से मेरी उपासना करते हैं – ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।। भगवान ने कहा था कि भक्तगण अपनी-अपनी रुचि के अनुसार, भिन्न-भिन्न देवताओं की उपासना करते हैं। अर्जुन, जो मेरा चिन्तन करते हैं, वे मुझे प्राप्त होते हैं। पर कई लोग होते हैं, जो भगवान का चिन्तन इस प्रकार नहीं कर पाते। भगवान ने अपना विराट् स्वरूप दिखाकर यह बतलाया कि समस्त कर्मों की प्रेरणा के पीछे मैं हूँ। मैं ही इस जगत् का पिता हूँ। पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः। वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च।। – मैं जगत् का पिता-माता हूँ। मैंने ही यह सब धारण किया है। कई भक्त इसकी धारणा नहीं कर पाते। भिन्न-भिन्न देवताओं की उपासना करते हैं। किसलिए करते हैं? क्योंकि उन देवताओं से किसी प्रकार की कामना की पूर्ति की इच्छा रहती है। हम देवताओं की उपासना क्यों करते हैं? मन्दिर में क्यों जाते हैं? जब कभी हम पर विपत्ति आ पड़ती है, उस विपत्ति को दूर करने की प्रार्थना लेकर हम पहुँचते हैं, मन्दिर में, किसी तीर्थ में जाते हैं।

अब २३वें श्लोक में भगवान कहते हैं कि जो दूसरे देवताओं की उपासना हो रही है – येऽप्यन्यदेवता भक्ताः, जो अन्य देवताओं के भक्त हैं, अन्य देवताओं की उपासना करते हैं, यजन्ते श्रद्धयान्विताः – जो श्रद्धापूर्वक दूसरे देवताओं का भजन करते हैं, ते अपि – वे भी, मामेव - मुझे ही, कौन्तेय – हे कुन्तीपुत्र, यजन्ति – पूजते हैं। किन्तु कैसे उपासना करते हैं? अविधिपूर्वकम् – वे लोग मेरी उपासना अविधिपूर्वक करते हैं। भगवान की पूजा की दो विधियाँ हैं – एक विधिपूर्वक पूजा, एक अविधिपूर्वक पूजा, एक प्रत्यक्ष पूजा, एक अप्रत्यक्ष पूजा। यहाँ भगवान का तात्पर्य परोक्ष पूजा से है। जो लोग दूसरे देवताओं की उपासना करते हैं, वे मेरी परोक्ष पूजा करते हैं। इसी अध्याय की चर्चा में भगवान ने कहा था – कई लोग इन्द्र-वरुण की उपासना करते हैं, कोई भूत-प्रेत इत्यादि की उपासना करते हैं। अर्जुन! लोग जितनी भी उपासना करते हैं, जिनकी जहाँ पर श्रद्धा है, उसी श्रद्धा के द्वारा मैं उन्हें प्राप्त होता हूँ। उनकी उस-उस श्रद्धा के द्वारा, मैं उनकी भक्ति को अचल कर देता हूँ।

किस प्रकार दूसरे देवताओं की उपासना करते हैं। श्रद्धा के साथ करते हैं। अर्जुन! तेऽपि मामेव – वे भी मेरी ही उपासना करते हैं। पर वे अविधिपूर्वक हैं। विधिपूर्वक भगवान की उपासना का तात्पर्य क्या है? भगवान की उपासना विधिपूर्वक कैसे हो? भगवान की विधिपूर्वक उपासना कब होती है, जब हम भगवान के स्वरूप को जानते हैं।

शास्त्रों ने भगवान के स्वरूप को हमारे समक्ष रखा है। जब हम ईश्वर को अपनी समस्त प्रेरणाओं का मूल समझते हैं, तब समस्त क्रियाओं के मूल में उन्हीं की इच्छा को देखते हैं, उन्हीं को विराजित देखते हैं। इस प्रकार जब हम अन्तर्यामी ईश्वर की उपासना करते हैं, तो उसे विधिपूर्वक उपासना कहा गया है। पर जिस समय हम भगवान के इस स्वरूप को नहीं जानते, इस स्वरूप का चिन्तन नहीं करते, यह जो भगवान का सर्वव्यापी भाव है, उनका अन्तर्यामित्व है, जिस समय हम इन गुणों का चिन्तन नहीं करते, हम भिन्न-भिन्न देवताओं की भिन्न-भिन्न रूपों में श्रद्धा के साथ उपासना करते हैं, तो वह उपासना भगवान की ही उपासना है, पर अविधिपूर्वक उपासना है। अविधिपूर्वक क्यों है? क्योंकि देवताओं से कामना-पूर्ति की इच्छा रहती है, इसीलिए मनुष्य देवताओं के पास जाता है। भगवान के पास जाने से भगवान को छोड़कर अन्य किसी की कामना होती ही नहीं।

श्रद्धा, यह शब्द अपने आप में महत्त्व रखता है। श्रद्धा एक ऐसी चित्त की वृत्ति है, जो द्वेषपूर्ण विचारों के लिए प्रतिबन्धकस्वरूप है। जैसे मान लीजिए, मेरा किसी के प्रति द्वेषभाव है। यदि उसके प्रति श्रद्धा आ गयी, तो श्रद्धा की वृत्ति उस द्वेषपूर्ण वृत्ति को दबा देगी। श्रद्धा का तात्पर्य है द्वेष की वृत्ति को दबा देनेवाली चित्तवृत्ति। यह शब्द 'शत्' धातु से बना है। शत् का अर्थ होता है, मन का कहीं पर जाकर चिपक जाना। जब हम मन को चिपकने के लिए उसे किसी व्यक्ति, तत्त्व का आधार दे देते हैं, तो उसको हम श्रद्धा कहते हैं। 'शत्' अर्थात् मन का कहीं पर जाकर चिपक जाना और उसे आधार प्रदान करना, उसे चिपकने के लिए जगह देना, एक आश्रय देना। उसको श्रद्धा कहते हैं।

विधिपूर्वक उपासना में हमारा मन एकाग्र होता है। अविधिपूर्वक उपासना में हमारा मन चंचल होता है। इसे

शेष भाग पृष्ठ ५२२ पर

समता की दिशा में विनोबाजी

कंचन दीदी, ब्रह्मविद्यामन्दिर, वर्धा, महाराष्ट्र

आचार्य विनोबा भावे जी से जब कोई संदेश माँगता था, तो अक्सर वे लिख देते थे – सत्य-प्रेम-करुणा। वे इसे सभी धर्मों का, विचारों का सार मानते थे। एक तरह से उनका सारा जीवन, कार्य, चिन्तन, प्रयोग इसी का महाभाष्य है। इसे सारे समाज में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न उन्होंने किया। उन्होंने इसकी विविध प्रकार से व्याख्या की है, एक सुन्दर समीकरण ही बना दिया –

सत्य – जीवन का लक्ष्य

प्रेम – जीवन की पद्धति

करुणा – जीवन का कार्य

करुणा को उन्होंने जीवन का कार्य कहा है। हम देखते भी हैं कि भूदान के रूप में उन्होंने करुणा की गंगा ही बहायी। वे कहते थे – ''हमें घुमानेवाली चीज न हमारा ज्ञान है, न हमारा त्याग है और न फकीरी का बाना है। हमें घुमानेवाली चीज तो हमदर्दी है, करुणा है।'' करुणा मनुष्य को चुपचाप नहीं बैठने देती। दूसरों के लिये कुछ-न-कुछ करने को प्रेरित करती है। उसी करुणा ने १४ वर्षों तक सतत आसेतुहिमालय पैदल घूमने के लिये उन्हें प्रेरित किया।

लेकिन विनोबाजी को मात्र करुणा से ही संतोष नहीं था। उससे आगे का उनका दर्शन था – साम्ययोग का। आज विज्ञान का जमाना है। विज्ञान अब कोई भी विषमता सहन नहीं करेगा। इसीलिए अब किसी भी रूप में न आर्थिक, न सामाजिक, न धार्मिक, न लैंगिक विषमता चलेगी। अत: समता की माँग युग की माँग है। अगर सही रास्ते से साम्य नहीं हुआ, तो दुनिया गलत रास्ते में जायेगी। उसी में से साम्यवाद का जन्म हुआ। इसलिए साम्य करुणामूलक ही होना चाहिए। साम्य जब करुणा में से निकलेगा, तभी सत्य-अहिंसा पनपेगी और शान्ति होगी। यही साम्ययोग है।

साम्ययोग विनोबाजी का दर्शन है। उसकी प्रभा उनके पूरे जीवन में फैली दीखती है, खासकर भूदान में। भूदान के लिये लोग मानते हैं कि विनोबाजी जमीनवालों से जमीन लेकर भूमिहीन लोगों को देते थे। लेकिन यह पूर्ण सत्य नहीं है कि विनोबाजी जमीनवालों से जमीन लेकर भूमिहीनों को देते थे। बल्कि वे समाज में समता की स्थापना करने के लिए भूदान माँगते थे। **दानं संविभागः** – वे भूदान के द्वारा सम्यक् विभाजन चाहते थे। वे कभी भी जमीनवाले से यह नहीं कहते थे – ''आप बड़े जमीनवाले हैं, दया करके, उपकार करके भूमिहीनों को जमीन दें। बल्कि कहते थे कि 'हम सब भाई-भाई हैं। आपके घर में अगर पाँच लोग हैं, तो मैं छठा गरीबों का प्रतिनिधि हूँ। लाओ उनका हिस्सा।'' ये उनके लिए कोरे शब्द नहीं थे। बल्कि यह उनकी अनुभूति थी, प्रतीति थी। अत: लाखों लोगों ने उनका यह दावा स्वीकार करके भूमि दान भी दिया। अगर कोई सौ-दो सौ एकड़ वाला दो-चार एकड़ दे, तो उसे विनोबाजी अस्वीकार कर देते थे। एक समय ऐसा आया कि अल्प दान वापस भी किया। वे कहते थे कि मैं भिक्षा नहीं माँग रहा हूँ, मैं साम्ययोग की दीक्षा दे रहा हूँ। मैं गरीबों का अधिकार मानकर माँग रहा हूँ। इसलिए कि मानव-मानव के बीच का अन्तर कम हो। सबका जीवन उन्नत बने।

इसीलिए 'सबै भूमि गोपाल की, नहीं किसी की मालिकी' यह भावना जन-जन तक पहुँची। जमीन का मालिक मनुष्य नहीं, ईश्वर ही हो सकता है। यदि यह हम मान लें, तो समाज में सर्वत्र बन्धुत्व और प्रेम होगा। तब ईश्वर और सृष्टि भी अपनी प्रसन्नता बरसाये बिना नहीं रहेगी।

बिहार के मुजफ्फरपुर का एक मधुर प्रसंग याद आता है। वहाँ विनोबाजी की यात्रा चल रही थी। बारिश के दिन थे, लेकिन चारों ओर सूखा पड़ा था। बादल आते और उमड़-घुमड़कर चले जाते। लोगों ने विनोबाजी से कहा कि बारिश नहीं होने से हमारी खेती नहीं हो पा रही है। तब बिनोजी ने आसमान की ओर हाथ उठाकर कहा – देखो, ये बादल थोड़े व्यक्तियों पर नहीं बरसते, सब पर समान बरसते हैं। हम केवल अपना ही सोचते हैं, स्वार्थी बनते हैं, इसीलिये सृष्टि भी कठोर बनती है। अगर हम सब पर समान प्रेम करेंगे, अपना भाई मानकर भूमि देंगे, तो बादल अवश्य बरसेंगे। आप विश्वास कीजिए, यदि हमारे गाँव में कोई भूमिहीन नहीं रहेगा, तो ये बादल जरूर बरसेंगे। गाँववालों ने वह एक स्वर से मान लिया। उसके बाद प्रार्थना शुरू हुई और

बादल झमाझम बरसने लगे। यह कोई चमत्कार नहीं है, यह साम्ययोग का संदेश है, जिसने सृष्टि को भी स्पर्श किया।

बारिश से बचने के लिए कुछ लोगों ने छाते निकाले। तब विनोबाजी ने कहा कि सबके पास छाते नहीं हैं, अत: अपने छाते बंद करें। यह तो ईश्वर की करुणा बरस रही है, उसमें भीगें। विनोबाजी के साथ पाँच हजार से अधिक लोग एक भी शब्द बोले बिना शान्ति से खड़े होकर प्रार्थना करने लगे। विनोबाजी मंच पर खड़े होकर 'सीताराम राम राम, राजाराम राम राम' गाने लगे। उनके साथ सभी आबालवृद्ध, बहनें उस बरसती बारिश में झूमकर गाते रहे।

उन्हीं दिनों का एक और प्रसंग है। संथाल में विनोबाजी की यात्रा चल रही थी। वे कहते थे कि संथाली यानी संतों की राह पर चलनेवाला। उन्हें विनोबाजी समता का विचार समझाते हुए कहते कि जैसे हम परिवार में मिल-बाँटकर खाते हैं, वैसा ही गाँव में भी होना चाहिए। सबके पास भूमि होगी, तो सभी श्रम करके अपने परिवार का पालन करेंगे। कोई भी भूखा-बेकार नहीं रहेगा। .... संथाली भाइयों को विचार समझाकर विनोबाजी जाने लगे, तो देखा कि रास्ते पर संथाली भाइयों के समूह जगह-जगह खड़े हैं। सब एक के बाद एक बोलने लगे – "बाबा! हम जमीन देंगे, हमारी जमीन लो, बाबा, हमारी जमीन लो।" बाबा ने उनकी ओर देखकर कहा – "हाँ, अब जमीनें बाँट डालो। अपने पास जो भी हो, वह पड़ोसियों में बाँट डालो।" फिर बाबा ने साथ के कार्यकर्ता को जमीन लिख लेने को कहा।

विनोबाजी को मात्र अमीरों ने ही नहीं, गरीबों ने भी भूमि दी। अनेक प्रसंग हैं, जिसमें एक-दो कठेवाले ने भी अपनी भूमि दी कि किसी गरीब को दे दें। कभी लोग बाबा से कहते – आप इन गरीबों से क्यों जमीन लेते हैं, इन्हें तो देना चाहिए। बाबा मुस्कुराकर बहुत सुन्दर जवाब देते थे – भगवान कृष्ण ने भी सुदामा को बिना तंदुल लिये नहीं दिया था। सुदामा को भगवान ने पहले गाढ़ आलिंगन किया, फिर जिस आसन पर स्वयं बैठते थे, उस पर बिठाया। यहाँ ध्यान देने की बात है कि यह मात्र करुणा नहीं, समता है। उन्हें कुछ दान देकर भेज सकते थे। लेकिन उस दरिद्र ब्राह्मण को अपने आसन पर बिठाकर पूछते हैं – मेरे लिये क्या लाये हो? सुदामा मुट्ठीभर तंदुल कैसे दें, इस संकोच में छिपाते हैं, लेकिन भगवान छीन कर खाते हैं। भगवान निष्ठुर नहीं हैं, बल्कि उस गरीब की शक्ति बढ़ाना चाहते हैं। विनोबाजी भी नहीं चाहते थे कि गरीब हमेशा सिर्फ माँगता रहे। बल्कि 'मेरा भी समाज में कुछ योगदान हो, हमें भी कुछ देना चाहिए' उसकी इस भावना को आगे बढ़ाया। हम भूदान का इतिहास देखें, तो कितने सारे सुदामाओं ने तंदुल दिये, कितनी ही शबरियों ने बेर दिये। क्योंकि वह एक यज्ञ था और यज्ञ में सबका सहभाग हो, इसलिए विनोबाजी गरीबों से भी दान लेते थे।

विनोबाजी मानते थे कि हर मनुष्य के पास कुछ-न-कुछ समाज को देने के लिये है। जिसके पास जमीन है, वह जमीन का एक हिस्सा दे। जिसके पास संपत्ति है, वह संपत्ति का एक हिस्सा दे। जिसके पास बुद्धि है, वह उसे समाज के विकास में लगाये। जिसके पास श्रम है, वह उसे लोगों की सेवा में लगाये। आप गरीब हैं, बूढ़े-बीमार हैं, तो प्रेम तो सबको दे सकते हैं। अनेकों ने संपत्ति-दान समय-दान, जीवन दान भी दिया। जिससे सबकी समाज में सहभागिता हो। कई लोगों ने जमीन के साथ कुएँ दिये, बीज दिये, हल-बैल दिये, झोपड़ी दी। देने का एक वातावरण-निर्माण हुआ।

जम्मू-कश्मीर का एक प्रसंग है। अहमद्दीन चौधरी नामक एक गूजर युवा था। विनोबाजी ने जब वहाँ प्रवेश किया, तो वह भी उपस्थित था। दो-तीन दिन साथ रहा, तो देखा कि विनोबाजी नियमित कुरानशरीफ की तिलावत करते हैं। लोग दूर-दूर से आकर प्रेम से जमीन देते हैं। उसे लग रहा था कि मुझे भी कुछ देना चाहिए, लेकिन मेरे पास तो जमीन है नहीं। उसे मालूम हुआ कि विनोबाजी केवल गाय का दूध पीते हैं और मेरे अब्बू के पास बहुत सारी गायें हैं। वह अपने अब्बू के पास गया और कहा कि एक वली अल्लाह, अल्लाह का प्यारा, सिद्ध पुरुष हमारे सूबे में आया है। वह सिर्फ गाय का दूध पीता है, आप मुझे एक अच्छी गाय उसके लिये दीजिए। पूरे जम्मू-कशमीर में वह अपनी गाय लेकर घूमा, ताकि विनोबाजी को दूध मिल सके। विनोबाजी की एक बात उसका ध्येय वाक्य बन गया था कि "अल्लाह का प्यारा बंदा वह है, जो खुद नेक करे और लोगों से भी करवाये।" अपने क्षेत्र में उसने काफी सेवा का काम किया और यहाँ ब्रह्मविद्या मन्दिर भी हमेशा आता रहा।

पूर्वी पाकिस्तान (बाँग्लादेश) में विनोबाजी की यात्रा चली। लाखों लोगों ने इस संत को सुना। पहले दिन का पहला ही पड़ाव था। पन्द्रह-बीस हजार लोग सुनने आये थे। विनोबाजी की समता की बात, सबको बाँटकर खाने की

बात सुनकर अब्दुल खालिक मुंशी नामक एक भाई खड़े हुए। उनके पास चार एकड़ जमीन थी और बड़े परिवार के पोषण की जिम्मेदारी थी। उन्होंने एक बीघा जमीन गाँव के एक गरीब आदमी को देने की तैयारी बतायी। लेकिन फार्म भरवाते समय कहने लगा कि 'नहीं-नहीं, इतने से उसका काम नहीं चलेगा। उसके पास तो रहने की भी जमीन नहीं है। अत: एक एकड़ जमीन लिखिए।'' दानपत्र भरवाकर विनोबाजी को प्रणाम किया। विनोबाजी ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा – ''मैं तुम्हारे लिए अल्लाह से दुवा माँगूँगा'' यह सुनते ही उसकी आँखें छलकने लगीं। ऐसे कितने ही लोगों ने जमीन दी।

वहीं का एक और मर्मस्पर्शी प्रसंग याद आता है। विनोबाजी को जमीन देने के लिये बहुत सारे लोग लाइन में लगे थे। एक युवती माँ भी अपने नन्हें बच्चे को गोद में उठाये लाइन में खड़ी थी। जब उसका नम्बर आया, तो उसने कहा कि 'आपके मुल्क में आपको बहुत जमीन मिली है, यहाँ भी मिलेगी। लेकिन मेरे पास आपको देने के लिए कुछ नहीं है। अपना कहने लायक मेरा यही एक बच्चा है, इसे मैं आपको सौंपती हूँ।'' यह कहकर आँसुओं के साथ उसने बच्चे को विनोबाजी की गोद में डाल दिया। अपना सर्वस्व समर्पण करनेवाली उस माँ के बच्चे को विनोबाजी ने थोड़ी देर सहलाया, फिर माँ को सौंपते हुए कहा – ''मेरी ओर से इसकी परिवरिश करो और इसे अच्छा इंसान बनाओ।'' जमीन कितनी मिली, कितनी बँटी, यह तो हम जानते हैं, लेकिन ऐसे कितने ही मार्मिक प्रसंग हुए, जो मानव-हृदय की उदात्तता को प्रकट करते हैं।

केवल आर्थिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक समता की ओर भी विनोबाजी इंगित करते थे। उनका एक प्रसिद्ध सूत्र है – **साम्यं समाधानम्**। जिसमें सबका सामाधान हो, वही साम्य है। अपने समान दूसरों को समझना, सबसे एकत्व अनुभव करना, यह सभी धर्मों का सर्वश्रेष्ठ सूत्र है। गीता इसे ही 'आत्मौपम्य' कहती है। इसीलिये विनोबाजी ने गीता को साम्ययोग कहा।

विनोबाजी ने जीवन के हर क्षेत्र में समता को प्रस्थापित किया। समता का अर्थ वे बताते थे – सबसे नीचे के साथ एकरूप होना। उसका साधन बताया – श्रमनिष्ठा, ऐच्छिक दारिद्र्य और सादगी। वे उसके विविध प्रयोग भी करते रहते थे। ऐच्छिक दारिद्र्य का एक उदाहरण याद आता है। एक दिन अपने सेवक से विनोबाजी ने पूछा – मेरे हाथ धोने के साबुन का सालभर का कितना खर्चा आता है। सेवक ने हिसाब लगाकर बताया – २५ पैसा। तो उन्होंने मिट्टी मँगवायी, उसे गीला करके साबुन के आकार का बनाया और उसका उपयोग करने लगे। किसी ने तर्क दिया कि सालभर में सिर्फ २५ पैसे ही तो लगते हैं। विनोबाजी ने कहा – हिन्दुस्तान में ३५ करोड़ लोग हैं, उनका हर साल २५ पैसा भी बचे तो कितनी बचत होगी। ऐसे कितने ही प्रयोगों की कहानियाँ हम यहाँ सुन सकते हैं कि वे कैसे-कैसे प्रयोग करवाते थे – किताबें निकालीं, आसन निकाले, खाट-पाट आदि निकाले। उनकी अपरिग्रह की व्याख्या ही है कि जिस चीज के बिना काम चल सकता है, उसको नहीं रखना। ब्रह्मविद्या-मन्दिर आत्यन्तिक समता का उदाहरण है। बाकी बातों को तो छोड़ दें, जहाँ ज्ञान में भी भेद नहीं है। साधना, समाधि, मुक्ति भी व्यक्ति तक सीमित न रहे, सबके लिये हो, यह एक बहुत बड़ी आध्यात्मिक समता की उड़ान है।

एक और उल्लेखनीय बात है कि विनोबाजी को मात्र मनुष्यों के बीच की ही समता से समाधान नहीं था। वे चाहते थे कि सारी सृष्टि एक साथ, प्राणी-जगत यानी सबके साथ साम्य हो। इसीलिये उन्होंने ऋषि-खेती के प्रयोग किये। इसीलिये अपने अंतिम दिनों में गोरक्षा के लिये प्राणों की बाजी लगायी, आमरण उपवास का संकल्प किया। ऐसा महापुरुष **सुहृदं सर्वभूतानाम्** – प्राणीमात्र का मित्र होता है।

वास्तव में, आत्मा की भूमिका पर जिसका जीवन खड़ा होगा, उसको इसके अलावा दूसरा कुछ सूझेगा ही नहीं। शरीर के कारण ही विषमता होती है। हम शरीरपरायण हैं, इसलिये विषमता हमारे जीवन में है। आत्मा की भूमिका पर पहुँचे हुए मनुष्य के लिये समत्व सहज-स्वाभाविक है। लेकिन उसकी अनुभूति सारे समाज को भी हो, सारा समाज समता की भूमिका पर खड़ा हो, यह उनका प्रयत्न था।

ज्ञानदेव महाराज ने कहा है – अवघा डोळा तुजम्या पहावा अर्थात् सब आँखों से तुम्हें देखूँ। विनोबाजी भी यही चाहते थे कि सबकी आँखों से तुझे देखूँ, सबके कानों से तुझे सुनूँ, सबके चरणों से तुम्हारी ओर आऊँ। समूहरूपेण सत्य की खोज करते हुए, समता की ओर कदम बढ़ाना है और परम साम्य तक पहुँचना है। अभिधेयं परम साम्यम्, यह सूत्र दिया है। ○○○ ('मैत्री' से साभार)

कविता

माँ : इतना प्यार करेगा कौन?

सुखवीर सिंह राणा, उत्तर प्रदेश

लाड़-प्यार ममता की मूरत है, इन्कार करेगा कौन?
मेरी माँ करती है जितना, इतना प्यार करेगा कौन?
मेरे सुख में सुखी सदा ही मेरा शुभ नित चाहा करती,
काम-काज में बहुत व्यस्त भी मेरी ओर लखाया करती ।।
बस्ती के बच्चों में सबसे सुन्दर बच्चा लगता हूँ,
लाख बुराई होने पर भी माँ को अच्छा लगता हूँ ।
लाड़-प्यार की पराकाष्ठा रिश्तेदार करेगा कौन?
मेरी माँ करती है जितना, इतना प्यार करेगा कौन?
मेरा चलन सही करने को दंडित भी कर देती माँ,
चोट लगी होती है मुझको आँखें नम कर लेती माँ ।
दुख-दर्दों के आँसू अपने आँचल में भर लेती माँ,
मेरे कर्मों का दुष्फल भी अपने सिर धर लेती माँ ।
इतने अंधे त्याग समर्पण का व्यवहार करेगा कौन?

मेरी माँ करती है जितना, इतना प्यार करेगा कौन?
संसारी सुख-साधन सारे सुलभ कराना चाहती माँ,
दूर गगन से चाँद-सितारे तोड़ के लाना चाहती माँ ।
बिना बात भी रूठ गया तो बहुत दुखी हो जाती माँ,
मंदिर से ज्यादा विनती कर-कर मुझे मनाती माँ ।
खामखाँ भी मेरी खुशामद सौ-सौ बार करेगा कौन?
मेरी माँ करती है जितना, इतना प्यार करेगा कौन?
माँ के लाड़-प्यार से वंचित को न हो पायेगा बोध,
सुख-आनन्द का दिव्य धाम, माँ का आँचल माँ की गोद ।
नये दौर की पीढ़ी माँ को थोड़ा करके आँक रही,
वृद्धाश्रम के कोने से बूढ़ी ममता झाँक रही ।
जर नैया बिना माँझी के सागर पार करेगा कौन?
मेरी माँ करती है जितना, इतना प्यार करेगा कौन?

पृष्ठ ४८७ का शेष भाग

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम्।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽविभ्रच्छ्वसन् मृतः ।।

– जो पुरुष समर्थ होकर भी वृद्ध माता-पिता, सती पत्नी, बालक, सन्तान, गुरु, ब्राह्मण और शरणागत का भरण नहीं करता, वह जीवित रहते हुए भी मृतक के सदृश है।

तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ।
मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ।।८।।

– पिताजी! हमारे इतने दिन व्यर्थ ही बीत गए। क्योंकि कंस के भय से सदा उद्विग्नचित्त रहने के कारण हम आपकी सेवा करने में असमर्थ रहे।

तत् क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः ।
अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ।।९।।

– मेरी माँ और मेरे पिताजी! आप दोनों हमें क्षमा करें। हाय! दुष्ट कंस ने आपको इतने-इतने कष्ट दिये, परन्तु हम परतन्त्र रहने के कारण आपकी कोई सेवा-शुश्रूषा न कर सके।[२]

माता-पिता की सेवा नहीं करनेवाले की दुर्गति

श्रीमद्‌भागवत पुराण में माता-पिता से विरोध करनेवाले की बड़ी दुर्गति का चित्रण किया गया है। ऋषि कहते हैं – **यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक् स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजन परिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्ताद ग्न्यर्काभ्यामिति-तप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिःशरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्ष सहस्राणि।**[३]

– जो मनुष्य इस लोक में माता-पिता, ब्राह्मण और वेद से विरोध करता है, उसे यमदूत कालसूत्र नरक में ले जाते हैं। इसका घेरा दस हजार योजन है। इसकी भूमि ताम्बे की है, इसमें जो तपा हुआ मैदान है, वह ऊपर से सूर्य और नीचे से अग्नि के दाह से जलता रहता है। वहाँ पहुँचाया हुआ पापी जीव भूख-प्यास से व्याकुल हो जाता है और उसका शरीर बाहर-भीतर से जलने लगता है। उसकी बेचैनी यहाँ तक बढ़ती है कि वह कभी बैठता है, कभी लेटता है, कभी छटपटाने लगता है, कभी खड़ा होता है और कभी इधर-उधर दौड़ने लगता है। इस प्रकार उस नर-पशु के शरीर में जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्ष तक उसकी यह दुर्गति होती रहती है।

अत: माता-पिता की कभी भी उपेक्षा न करें और उनकी सेवा कर जीवन में उत्कर्ष को प्राप्त करें। ○○○

सन्दर्भ-सूत्र – १. तैत्तिरीयोपनिषद्, १ वल्ली/अनुवाक् ११/२, **२.** श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय ४५, श्लोक ५-९, **३.** वही, ५/२६/१४.

साधुओं के पावन प्रसंग (२३)

स्वामी भूतेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

मैंने महाराज को जापानी भक्तों का प्रणाम निवेदित किया। उन्होंने उनलोगों की श्रद्धा-भक्ति के विषय में बताया।

मैं – भगवान, भक्तों को कितना स्नेह करते हैं! इसका क्या कोई मापदण्ड है? आप बताइये। गोपियाँ श्रीकृष्ण को कितना प्रेम-स्नेह करती थीं, भागवत में उसका मापदण्ड मिलता है, किन्तु श्रीकृष्ण गोपियों को कितना प्रेम-स्नेह करते थे, इसका क्या कोई मापदण्ड है?

स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज

महाराज – हाँ, भागवत में उसका उल्लेख मिलता है।

उसके उपरान्त उन्होंने एक श्लोक कहा। वह मुझे स्मरण नहीं है।

मैं – क्या ठाकुर हमलोगों के विषय में सोचते हैं?

महाराज – वे यदि हमलोगों के विषय में नहीं सोचेंगे, तो हमलोग कहाँ जायेंगे? वे यदि हमलोगों का कल्याण नहीं करेंगे, तो हमलोग कहीं के भी नहीं रहेंगे?

महाराज के आत्मविश्वास और शरणागति से मैं मुग्ध हो गया।

महाराज – बिस्तर पर सोये रहने से भी नींद नहीं आती। इसीलिए सोचता हूँ कि और जीवित रहने से क्या लाभ?

मैं – यह आपके हाथ में नहीं है।

महाराज – पराश्रित हो गया हूँ। साधु जीवन के लिए यह अच्छा नहीं। (भावार्थ) 'स्वाधीनता के बिना कौन जीना चाहता है, कौन जीना चाहता है?/ दासत्व की बेड़ी को पैरों में कौन पहनना चाहता है, कौन पहनना चाहता है?'

मैं – आप पुनः अमेरिका चलिए। मैं आपको प्रथम श्रेणी में ले जाऊँगा और नौ प्रकार के फल से आपको नाश्ता कराऊँगा।

महाराज – केवल नौ प्रकार?

मैं – अच्छा, हम दस प्रकार के फल देंगे।

महाराज सुनकर हँसने लगे। उन्होंने कहा, "उस समय (१९८८ ई. में) यदि नहीं जाता, तो फिर जाना नहीं होता। अमेरिका में बहुत घूमना हुआ। सेंट लुइस में जाकर ऐसा अनुभव हुआ कि अपने घर में ही आ गया हूँ। तुम वहाँ थे इसीलिए ऐसा अनुभव हुआ।" उनकी इन स्नेहपूर्ण बातों से मेरा मन आनन्दित हो गया।

सेवक ने आकर बताया कि दर्शन का समय समाप्त हो गया है। मैंने कहा, "महाराज, राजा महाराज ने एक बार भक्तों से कहा था 'सुनो, मुझे मधुमेह है – केवल मिठाई खाना ही नहीं है, बल्कि मीठा बोलना भी मना है।' "

महाराज – देखो, मुझे मधुमेह नहीं है। मेरी बातें मीठी हैं कि नहीं, मैं नहीं जानता। मेरे मुख से बातें निकल जाती हैं। उसे ही लोग कहते हैं मीठी बातें।

उसके बाद उन्होंने कुर्सी से उठकर पुनः कहा, "सुनो, डॉक्टरों ने दर्शन देने आदि के विषय में बहुत प्रतिबन्ध लगा दिया है। तुम प्रतिदिन दस, साढ़े-दस बजे आना। (सेवकों को सुनाकर) ये सब जानते हैं कि मैं तुमको प्रेम करता हूँ, आने से नहीं रोकेंगे।" वास्तव में, उनके प्रेम-स्नेह को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

प्रातः स्नान करने के बाद मैं पुनः गया। महाराज अपने निवास-स्थान के बरामदे में थोड़ा-सा टहल रहे हैं। कई भक्त बाहर की खिड़की से महाराज का दर्शन करने लगे। महाराज ने कहा, "वे लोग क्या देख रहे हैं, बोलो तो? मैं तो देखने में भी अच्छा नहीं हूँ। शरीर का रंग काला है और एक वृद्ध मनुष्य हूँ।" मैंने कहा, "आप गुरु हैं।" महाराज

ने कहा, ''वे लोग यदि यह भावना करते हैं कि भूतेशानन्द का शरीर ही गुरु है, तो रोते-रोते मरेंगे।''

महाराज ने बातों-बातों में कहा, ''एक भक्त ने आकर मुझसे पूछा, 'मन में बहुत अशान्ति है। क्या करने से शान्ति मिलेगी?' मैंने उत्तर दिया, 'एक सरल उपाय है।' भक्त ने पूछा, 'क्या?' मैंने कहा, 'वासना छोड़ दो।' भक्त ने कहा, 'हम गृहस्थ हैं। हम कैसे सब वासना छोड़ सकते हैं? यह असम्भव है।' मैंने कहा, 'तो फिर अशान्ति में ही जीवन व्यतीत करो। शान्ति का केवल एक ही मार्ग है – वासना-त्याग। यदि यह नहीं कर सकते, तो अशान्ति नहीं जायेगी। **अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्**।'' (अर्थात् क्षणभंगुर, सुखरहित इस मनुष्य शरीर को प्राप्त कर मेरा भजन कर।) (गीता ९/३३)

तदनन्तर नित्यमुक्तानन्द दीक्षा के सम्बन्ध में महाराज से परामर्श करने के लिए आये। दीक्षा बन्द है, इसलिए बहुत-से भक्त दीक्षा के लिए प्रतीक्षा-सूची में हैं। मैंने कहा, ''आप केवल मन्त्र बोल दीजिएगा और नित्यमुक्तानन्द बाकी सब कुछ देख लेंगे।''

महाराज ने कहा, ''मैं सन्तुष्ट होऊँ, यह आवश्यक है। दीक्षा के पूर्व और तत्पश्चात् मैं भक्तों को दीक्षा की उपयोगिता, मन्त्र का अर्थ, ध्यान-प्रणाली तथा इसके साथ कुछ अन्य उपदेश देता हूँ। ऐसा नहीं करने पर मुझे सन्तुष्टि नहीं होती।'' भक्तों के प्रति उनके मन में जो गहरी संवेदना थी, वह उनके प्रत्येक वाणी और आचरण में प्रकट होता था। अपने शरीर के दुख-कष्ट को भूलाकर वे भक्तों के लिए मंगल-कामना करते थे।

मैं अमेरिका से महाराज के लिए एक special cereal, prunes, Neutrogena soap for dry skin और (मेरी नयी पुस्तक) God Lived with Them लेकर गया था। मैंने पुस्तक को उनके हाथ में दिया। उन्होंने उसे उलट-पलट कर देखा।

अपराह्न में ३.३० बजे मैं चाय के समय पुन: गया। मैंने कहा, ''महाराज, एक वस्तु लाया हूँ, किन्तु आपको देने में भय लग रहा है।'' ''क्या लाये हो?'' ''Peacon Sandess-Peacon nut से निर्मित एक प्रकार का अमेरिकी बिस्कुट।'' ''क्यों भयभीत हो रहे हो?'' यह बहुत rich, किन्तु reduced fat है। खाने के पश्चात् यदि आपका शरीर अस्वस्थ हो जायेगा, तो आपके डॉक्टर मुझे दोष देंगे।'' ''तुम लेकर आओ। मैं एक छुपाकार खा लूँगा। कोई नहीं देख पायेगा।'' मैं साधु-निवास से छुपाते-छुपाते पॉकेट ले आया। तदुपरान्त मैंने पॉकेट खोलकर उसमें से एक बिस्कुट निकालकर महाराज को दिया। उन्होंने चाय के साथ उसे खाया। तदनन्तर मैंने ingredient पढ़कर देखा, तो उसमें कोई भी हानिकारक सामग्री नहीं थी। उनको भी मैंने पढ़कर सुनाया। उन्होंने बालकवत् आनन्दित होते हुए कहा, ''देखो, तुम मेरे लिए लाये थे, फिर भी देने से भयभीत हो रहे थे।'' तत्पश्चात् उन्होंने सेवकों से कहा कि उन्हें प्रतिदिन सन्ध्या चाय के साथ अमेरिका का यह बिस्कुट दिया जाय।

श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग के सम्बन्ध में कई प्रश्न मेरे मन में थे, जिसे मैंने पत्र द्वारा महाराज से पूछा था। उन्होंने उत्तर भी दिया था। किन्तु एक स्थान पर उनके उत्तर से मेरा संशय दूर नहीं हुआ। वह संशय था – श्रीमती चन्द्रमणि देवी द्वारा कामारपुकुर के ओझाओं से ठाकुर के ऊपर से चण्ड को उतरवाना। महाराज ने लिखा था : ''चण्ड अर्थात् भूत या spirit.'' शब्दकोश में भी ऐसा ही है। मैंने महाराज से कहा, ''Christopher Isherwood ने चण्ड को medium कहा है। कारण भूत कैसे वार्तालाप कर सकता है? जिस प्रकार, चण्ड ने ठाकुर से कहा था, 'गदाई, तुम इतना सुपारी क्यों खाते हो?' '' महाराज ने मुस्कराते हुए कहा, ''वह एक प्रकार का छद्म है। कामारपुकुर अंचल के निवासियों में उस प्रकार का विश्वास था। वहाँ पर सबका दो मंजिला मिट्टी का घर है। एक व्यक्ति चण्ड बनकर पहले से ही अटारी पर चढ़कर बैठा रहता। तत्पश्चात् ओझा मन्त्र पढ़ता और प्रश्न करता था। आवाज बदलकर चण्ड ऊपर से उत्तर देता था। एक बार ऐसा हुआ कि एक चण्ड पहले से ही ऊपर अन्धकार में बैठा हुआ था; तदनन्तर एक और चण्ड ऊपर अटारी में बैठने के लिए गया। पहले वाला चण्ड दूसरे चण्ड के शरीर से स्पर्श होने के कारण चिल्ला उठा। तदुपरान्त भय के कारण दोनों चण्ड एक-दूसरे को पकड़कर ऊपर से नीचे गिर पड़े।'' इस पर हम दोनों बहुत हँसे और मैं चण्ड के विषय में समझ गया।

०७/०८/१९९७, बेलूड़ मठ, प्रात: ७ बजे

सेवकों से मुझे ज्ञात हुआ कि रात्रि में महाराज को श्वास लेने में कठिनाई हुई थी तथा उनको ऑक्सीजन देना पड़ा

था। फिर भी महाराज प्रात:काल संन्यासियों को प्रसन्नचित्त से दर्शन दे रहे थे।

मैं – संन्यास-जीवन में क्या करणीय है?

महाराज – वह बात तो 'प्रेष मन्त्र' में है – सर्वस्व-त्याग। यही पहली बात है और दूसरी – उन पर सम्पूर्ण आत्मसमर्पण। पहला नकारात्मक है, जबकि दूसरा सकारात्मक – सब उनको समर्पण।

मैं – पाश्चात्य में renunciation (त्याग) शब्द सुनने से ही लोग भयभीत हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि यह निषेधात्मक है।

महाराज – जब तक भोग में आसक्ति रहती है, तभी तक त्याग भय की वस्तु मालूम होती है। भोगासक्ति के शान्त हो जाने पर त्याग से कोई भय नहीं रहता। वही स्वाभाविक है। इसके लिए उपाय है – उनके ऊपर सम्पूर्ण आत्मसमर्पित होना।

मैं – किस प्रकार?

महाराज – 'अहं' त्याग करके। मन से 'अहं' का त्याग करके वहाँ पर ईश्वर को विराजमान करो। तुम्हारा कार्य हुआ केवल 'अहं त्याग' करना। तुमको विराजमान करना नहीं होगा, वे तो सदैव वहाँ पर विराजमान ही हैं।

मैं – हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) ने कहा था – योगवासिष्ठ रामायण में है कि मनोनाश, वासनाक्षय और तत्त्वज्ञान एक साथ होता है। किस प्रकार?

महाराज – **'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो।** (अर्थात अरी मैत्रेयि! यह आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान करने योग्य है।) (बृहदारण्यक उपनिषद् २/४/५)। मनन ही उपाय है। तदनन्तर वासना। जो वासना इष्ट-प्राप्ति के प्रतिकूल है, वह मनन करने से चली जाती है। उस समय स्वाभाविक रूप से मनुष्य की मुक्ति होती है। ... आत्मा का चिन्तन-मनन करने से एषणात्रय (लोकैषणा, पुत्रैषणा, वित्तैषणा) का नाश होता है। तदुपरान्त तत्त्वज्ञान होता है। यह तीनों एक-के-बाद-एक आता है, ऐसा नहीं है, ये एक ही वस्तु हैं। प्रकाश आता है, अन्धकार चला जाता है।

मैं – वासनाक्षय नहीं होने से मनोनाश नहीं होता। पहले क्या होता है?

महाराज – वासनाक्षय और मनोनाश सिक्का का चित-पट है। आगे-पीछे कुछ नहीं है। पहले के साथ दूसरा भी साथ-साथ होता है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ५०० का शेष भाग

शिव की करालता के अन्तराल में उनका जो दिव्य सौन्दर्य है, उनकी कठोरता के अन्तराल में जो उनकी कोमलता है, उस पर जब दृष्टि जाती है, जब मैना और हिमांचल के अन्त:करण में सत्संग के द्वारा जो वृत्ति उत्पन्न होती है, तभी वे पार्वती का अर्पण भगवान शंकर को करते हैं। श्रद्धा का सच्चा समर्पण अर्थात् मृत्यु की बेला में मृत्यु का स्वागत करते हुए बुद्धि और सत्संग के द्वारा अन्त:करण में समर्पण की वृत्ति उत्पन्न होती है। यही काल का रूप है और यह निरन्तर सृष्टि में काल को देखकर भयभीत होनेवाली वृत्ति है। लोग काल से भयभीत हो रहे हैं, दुखी हो रहे हैं, उससे बचने का कोई उपाय नहीं है, पर गोस्वामीजी यह कहते हैं कि रामराज्य में कालकृत दु:ख था ही नहीं। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ५०४ का शेष भाग

मुमुक्षानन्द महाराज कल नरेन्द्रपुर से आए हैं। महाराज उनसे कहते हैं – वह हरिपद लड़का अच्छा है, किन्तु लगता है, उसका मेरुदण्ड थोड़ा दुर्बल है। किसी परामर्शदाता से मिलने से अच्छा होता। जोखिम उठाने में साहसी नहीं है। सा – बेकार, बड़ा हल्का है। मैं नहीं चाहता कि वह आए।

तुम लोगों का शिक्षा-प्रतिष्ठान बहुत अच्छा है। महिलाओं के सम्पर्क से दूर है। संन्यासी के साथ महिलाओं का सम्पर्क होने से ही समझ लेना होगा कि उसके पतन में विलम्ब नहीं है। ये लोग सारदामठ की बालिकाओं से मेरे लिए तकिया बनवाना चाहते थे, किन्तु मैंने मना कर दिया था। बालकों के स्वास्थ्य की ओर दृष्टि रखना। विष्णु घोष को लेकर उन्हें शारीरिक रूप से स्वस्थ करो। ठीक-ठीक पढ़ना-लिखना होने से ही ठीक-ठीक कर्म होगा। **(क्रमश:)**

पानी पीओ छानकर, चेला बनाओ जानकर

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

संत गोंदवलेकर महाराज का मूल नाम गणू था। उनके मन में भगवद्भक्ति का संचार हुआ, तो वे गुरु की खोज में निकल पड़े। हैदराबाद में एक साधु से भेंट होने पर उसने येहेलगाँव के तुकाराम चैतन्य से, जिसे लोग 'पागल तुका' कहते थे, से मिलने को कहा। उनकी पहचान पूछने पर साधु ने बताया, ''जिसके तन पर केवल लंगोटी है, सिर पर बच्चों की सी टोपी है, जिसके हाथों में चिलम हो और जो कुत्तों के साथ खेलता दिखाई दे, उसे ही तुम तुकाराम समझना।''

शहर में काफी भटकने के बाद महाराज को मूसा नदी के किनारे ऐसा व्यक्ति दिखाई दिया। दंडवत् प्रणाम करने पर उस व्यक्ति ने कहा, ''तुम मेरे पास क्यों आए हो? मैं तुम्हारा खून पी जाऊँगा।'' गणू ने कहा, ''अगर आप मेरा प्राण लेना चाहें, तो मैं खुशी से प्राण देने को तैयार हूँ। उससे पहले केवल यही प्रार्थना है कि आप मुझे अपना चेला बना लें।'' सामने तीन छोटे-छोटे बच्चे बालू से छोटा घर बना रहे थे। उनकी ओर इशारा करके तुकाराम ने कहा, ''जाओ, उन बच्चों को एक गड्ढा खोदकर गाड़ दो और उस गड्ढे पर बैठ जाओ।'' अब तक बहुत से लोग वहाँ एकत्र हो गये थे। गणू को बालकों की ओर जाते देख वे लोग घबरा गए। उन लोगों ने बालकों के माता-पिता को बच्चों के प्राण बचाने को कहा। वे लोग रोते-चिल्लाते अन्य लोगों के साथ भागते हुए वहाँ आ पहुँचे। आते ही वे पागल तुका पर और गणू पर पत्थर फेंकने लगे। तुकाराम ने गणू को गड्ढे पर से उठने और गड्ढे को खोदने को कहा। मिट्टी निकालने पर तीनों बच्चे मारे खुशी से अपने माता-पिता के पास आए। वे बच्चों को दुलारने लगे। उन लोगों ने जान लिया कि यह व्यक्ति पागल नहीं, एक सिद्ध महात्मा है। उनकी आँखों में खुशी के आँसू भर आए। उन्होंने संत को साष्टांग प्रणाम किया।

तुकाराम गणू को परखना चाहते थे कि यह गलत काम करने को तैयार होता है या नहीं। उसकी आज्ञाकारिता और दीक्षा पाने की तीव्र इच्छा देख उन्होंने गणू को दीक्षा देकर उपकृत किया।

जिस प्रकार स्वर्णकार या जौहरी सोने और हीरों को पहले कसौटी पर परखकर देखते हैं कि वे असली हैं या नकली, उसी प्रकार संत भी परीक्षा लेते हैं कि उनके पास आया व्यक्ति शिष्य होने के योग्य है या नहीं, वह सुपात्र है या नहीं। वे परखने के बाद ही शिष्य बनाते हैं। ○○○

पृष्ठ ५०७ का शेष भाग

तुलसीदासजी ने मानस में भगवान के स्वभाव को इस रूप में स्पष्ट भी किया –

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि।।

कब भगवान वज्र से कठोर हो जाते हैं और कब पुष्प से भी कोमल हो जाते हैं, यह सामान्य रूप से समझ में नहीं आता है। पर भगवान भक्त के प्रति दोनों में कोमल ही होते हैं, चाहे कोमल दिखें या कठोर, मूर्ति में उनकी कोमल कृपा ही होती है, भगवान के प्रति अंगद जैसा समर्पण सारी मानव जाति के लिए आदर्श है, जो घर से लेकर गुफाओं तक आदर्श है। यही कारण था रामराज्य बनने का कि वहाँ कोई भी भक्त भक्ति के द्वारा कुछ पाना नहीं चाहता है, अपितु भगवान की भक्ति को ही जीवन का चरम फल मानता है। अंगद इसके मूर्त रूप हैं। ○○○

पृष्ठ ५१४ का शेष भाग

ऐसे स्पष्ट समझ सकते हैं। हम मन्दिर में किसलिए जाते हैं? जब हम मन्दिर में जाते हैं, तीर्थ में जाते हैं, तो हमारा भाव यह रहता है कि हमें मन की शान्ति मिले, यह स्वाभाविक भाव है। हमारा मन ईश्वर के चरणों में अनुरक्त हो जाए, एकाग्र हो जाए। हम क्या देखते हैं? जब मन में किसी प्रकार की कामना आती है, तो मन विक्षिप्त हो जाता है, चंचल हो जाता है, कामना की पूर्ति का हमेशा ख्याल रहता है। भगवान के सामने हम खड़े हैं, पर मालूम नहीं मन हमारा भगवान में न होकर अन्यत्र कहीं पर भी है। **(क्रमशः)**

लोभ और आसक्ति : भगवान की प्राप्ति में महान शत्रु

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

ज्ञान का अभिमान नहीं होना चाहिए। अपने आपको जानना चाहिए। अभिमान के कारण मन शरीर के ऊपर जाता है। हम श्रीठाकुरजी के भक्त हैं। हमें उनके उपदेशों पर चलना है। हमें भगवान का नाम-जप कर, उनकी भक्ति कर देहात्मबुद्धि से ऊपर उठना है। हमारे अन्दर चैतन्य शक्ति है। चैतन्य के रहने से हम विचार कर सकते हैं। मनुष्य के भीतर ईश्वर विराजमान हैं। भगवान ने मनुष्य को एक अद्‌भुत शक्ति दी है। वह शक्ति यह है कि वह सब कुछ देख सकता है। अगर किसी बात का डर लग रहा है, तो भगवान का स्मरण करें। वे भयहारी हैं, सभी प्रकार के भय के नाशक हैं। मुझे ऐसा कौन-सा काम करना है, जिससे मेरा जीवन उन्नत होगा? भगवान और मृत्यु का स्मरण रखना चाहिए। **कालः क्रीडति गच्छति आयुः** – काल की क्रीड़ा में हमारी आयु बीतती जा रही है। लेकिन हम सोचते नहीं है कि अभी, इसी क्षण हमारी मृत्यु आ सकती है। उसको कोई टाल नहीं सकता। मृत्यु का स्मरण हमें बहुत से दोषों से बचाता है। जब मृत्यु अटल है, तो सदा सनातन भगवान को याद करते रहें। भगवान की भक्ति करें, सद्ग्रन्थ पढ़ें और महापुरुषों ने जैसा कहा है, वैसा आचरण करें।

आध्यात्मिक जीवन में एक बड़ा शत्रु है लोभ। आवश्यकता और लोभ अलग चीज है। लोभ की दिशा भगवान की ओर ले जाने से हमारा जीवन उन्नत होते जायेगा। हमारा सब कुछ भगवान का है, तो अपनी सम्पत्ति पर हमारा कोई स्वामीत्व नहीं है। हम अपनी सम्पत्ति के स्वामी नहीं हैं। सम्पत्ति के स्वामी तो भगवान हैं। सम्पत्ति हमें भगवान ने सदुपयोग करने के लिए दी है। हमें उस सम्पत्ति का अच्छा उपयोग करना है। उसका सदुपयोग करने से हमारा मन और चित्त शुद्ध होगा और शुद्ध रहेगा। हमारा मन स्वार्थ से अशुद्ध होता है और परमार्थ से शुद्ध होता है। चित्तशुद्धि जब तक नहीं होगी, तब तक मैं और मेरा का भाव नहीं जायेगा। मैं और मेरा का भाव रहते भगवान की उपलब्धि नहीं होती। लोभ में तीव्र आकर्षण की शक्ति होती है। लोग अपना मन सब तरह से लोभ से ही जोड़कर रखते हैं। माया हमें ईश्वर से हटाने के लिये बहुत उपाय करती है। इसी माया में यदि हमें माँ भगवती दिखने लगें और हम भगवती से माया हटाने की प्रार्थना करें, तो वे हमें अपनी माया से मुक्त कर देंगी। तब हमारा जीवन उन्नत होगा। हम सब ठाकुरजी के भक्त हैं। हमें दुराशा से बचना है। जब लोभ का विचार मन में आये, तब हमें भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए।

आसक्ति से कैसे बचना चाहिए। मैं और मेरा इसमें बन्धन है। विषयों से जुड़कर मन संसारी बन जाता है। जहाँ हमारा मन जुड़ता है, वही संसार है। हमें अपने मन को भगवान से जोड़ना पड़ेगा। तब भगवान मेरे अपने होंगे। भगवान से मन को जोड़ने के लिये संसार की वस्तुओं में जो आसक्ति है, उसे छोड़ना होगा और भगवान में ही मन को आसक्त करना होगा। जैसे पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि के सम्बन्ध से संसार में प्रेम होता है, आसक्ति होती है, वैसे ही भगवान से अपना सम्बन्ध जोड़ेंगे, तब भगवान से प्रेम होगा और भगवान में ही आसक्ति होगी। घर, बच्चे और हमारा सब कुछ प्रभु का ही है। यदि ऐसा सोचोगे, तो माया-मोह सब चला जायेगा। भगवान से प्रार्थना करो – हे भगवान! ये सारी सम्पत्ति तुम्हारी दी हुई है। उन सभी वस्तुओं को मैं तुमको ही समर्पित कर रहा हूँ, कर रही हूँ। ऐसी प्रार्थना और ऐसी भावना रखने से किसी वस्तु या व्यक्ति में आसक्ति नहीं होगी। यह ध्यान रहे, हम जब तक भगवान से कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ते, तब तक भगवान से प्रेम नहीं होगा, अपनत्व नहीं होगा। अत: भगवान के प्रति अपनत्व को मन में दृढ़ करें। ○○○

दैनिक कार्य : अपने दैनन्दिन कार्यों को भगवद्‌पूजा समझकर करो। इससे तुम्हारे सभी संस्कार शुद्ध होते जाएँगे, तुम्हारा मन भी ध्यान परायण बनेगा और तुम भगवद्-दर्शन के योग्य बन जाओगी। – **स्वामी गहनानन्दजी महाराज, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के १४वें परमाध्यक्ष।**
('गहन-आनन्द चिन्तन' पुस्तक से)

आध्यात्मिक जिज्ञासा (५९)

स्वामी भूतेशानन्द

(३५)

प्रश्न – महाराज! गीता में भगवान श्रीकृष्ण कह रहे हैं –

इदं ते ना तपस्काय ना भक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।(१८/६७)

(इस गीतार्थ को तुम कभी स्वधर्म अनुष्ठान रहित, अभक्त या गुरु-सेवाहीन व्यक्ति के पास मत कहना और जो मुझे मनुष्य समझकर उपेक्षा करता है या निन्दा करता है, उसे भी इस गीताशास्त्र का उपदेश मत देना।)

महाराज! भगवान ने यह बात क्यों कही?

महाराज – इन सबको कहने से ये लोग नहीं समझेंगे, धारणा नहीं कर सकेंगे, अश्रद्धा करेंगे। यहाँ तक कि विपरीत अर्थ समझेंगे।

– किन्तु महाराज, हमलोगों की धारणा ऐसी है कि थोड़ा-थोड़ा सुनते-सुनते भक्ति-विश्वास बढ़ता है। बिल्कुल नहीं सुनने से भक्ति-विश्वास कैसे बढ़ेगा?

महाराज – नहीं, ऐसा नहीं है। समझने के लिए, धारणा करने के लिए अधिकारी होना होगा। अधिकारी नहीं होने से केवल सुनने से क्या होगा? क्या हमलोग बचपन से नहीं सुन रहे हैं कि हम लोग आत्मा हैं? क्या हमलोगों की धारणा हो रही है? भगवान के कथन का उद्देश्य निन्दा करना नहीं है, बल्कि अधिकारी होने के लिये आवश्यक गुणों की स्तुति करना है। इसका तात्पर्य यह है कि 'नातपस्काय' (तपरहित) इत्यादि न हो कर 'तपस्काय' (तपस्वी) इत्यादि होना है।

– महाराज! धारणा क्यों नहीं होती है?

महाराज – मन शुद्ध नहीं है इसीलिए। मात्र विचार करने या सुनने से धारणा नहीं होती है। मन की अशुद्धि को दूर करना होगा।

ना विरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।
(कठोपनिषद - १/२/२४)

(जो पापाचरण से निवृत्त नहीं हुआ, जिसकी इन्द्रियलोलुपता शान्त नहीं हुई है, जो एकाग्रचित नहीं है, वह इस आत्मा को केवल प्रज्ञान – आत्मविषयक ज्ञान की सहायता से प्राप्त नहीं कर सकता।)

– महाराज! शुद्ध मन का क्या लक्षण है?

महाराज – जो तत्त्व को धारण करने में सक्षम हो। तत्त्व का जो मूल अर्थ या तात्पर्य है, शुद्ध मन उसे धारण करने में समर्थ होता है।

– महाराज! किसी भी व्यक्ति को लग सकता है कि वह तत्त्व-धारणा कर चुका है!

महाराज – वह मान सकता है। पागल को उसकी धारणा सत्य लगती है। कोई भी उसे नहीं समझा सकता है कि उसकी अनुभूति असत्य या गलत है, भ्रान्त है। जो भी हो, सत् - सत्य का क्या लक्षण है? वह त्रिकाल-अबाधित होगा। संशय-विपर्यय से रहित होगा। जिन्होंने यथार्थ धारणा की है, उन्हें पुनः कभी संशय या संदेह नहीं होगा। उनकी अनुभूति के विपरीत कोई विचार या तर्क उन्हें कभी विचलित नहीं कर सकेगा।

– महाराज! बुद्धि शुद्ध कैसे होती है?

महाराज – विचार से होती है। यह संसार अनित्य है, उसमें अभी भी आसक्ति क्यों है? इसी प्रकार बार-बार विचार करने से बुद्धि शुद्ध होती है।

प्रश्न – महाराज! गीता में भगवान कह रहे हैं –

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।(१०/१०)

– जो भक्त मुझमें सतत युक्त-चित्त हो प्रीतिपूर्वक हमारा भजन करते हैं, उन्हें मैं बुद्धियोग – ऐसा सद्विषयक ज्ञान प्रदान करता हूँ, जिससे वे लोग मुझे प्राप्त करते हैं।

महाराज! यहाँ बुद्धियोग से क्या तात्पर्य है?

महाराज – जिससे उन्हें प्राप्त किया जाय, वही वे प्रदान करते हैं। 'येन मामुपयान्ति ते' – जिससे मुझे प्राप्त कर सकेगा, यही बुद्धियोग है।

प्रश्न – महाराज! ध्यान और कल्पना में क्या अन्तर है।

महाराज – अवास्तविक विषय का चिन्तन कल्पना है, जो वास्तविक नहीं है। ध्यान में जिस वस्तु का चिन्तन किया जाता है, उसके अस्तित्व में हमलोग विश्वास करते हैं। हमलोग विश्वास करते हैं कि ध्येय वस्तु का अस्तित्व है। यद्यपि अभी हमलोग कल्पना की सहायता से ध्यान करने का प्रयास करते हैं, किन्तु वह केवल कल्पना नहीं है। अवास्तविक वस्तु अर्थात् जिसकी प्रकृत सत्ता नहीं है, उसका चिन्तन कल्पना है। ध्यान की वस्तु के अस्तित्व में हमलोग अविश्वास नहीं करते हैं।

– महाराज! एक उदाहरण दीजिए।

महाराज – जैसे आकाश में उद्यान की कल्पना करना। इसकी वास्तविक सत्ता नहीं है। यह केवल कल्पना है। आकाश में उद्यान होना सम्भव नहीं है।

– महाराज! ठाकुर ने कहा है – ईश्वर के लिये सब कुछ सम्भव है, जैसे लाल फूल के पेड़ में श्वेत फूल का होना। तब आकाश में उद्यान होना सम्भव क्यों नहीं है?

महाराज – सम्भव नहीं है, हमलोग इसलिए कहते हैं कि ऐसा होते हमलोगों ने नहीं देखा है। अर्थात् पहले ऐसी घटना नहीं घटी।

– महाराज! हमलोग हमेशा पहले का दृष्टान्त खोजते हैं। हमलोग जानना चाहते हैं, पहले ऐसा हुआ कि नहीं। इसका अर्थ है कि सृष्टि को अनादि मान रहे हैं।

महाराज – क्या अनादि?

– महाराज! सृष्टि अर्थात् जहाँ से हमलोग दृष्टान्त ले रहे हैं कि पहले ऐसा हुआ है कि नहीं।

महाराज – हुआ है कि नहीं, नहीं, ऐसी घटना घटी की नहीं।

– हाँ, घटना घटी की नहीं।

महाराज – उसका कारण है – ऐसी कोई भी अनुभूति सम्भव है, जो पहले न हुई हो। सम्पूर्ण न हो, अंशत: भी अनुभूति नहीं हुई है, ऐसी वस्तु की धारणा हमलोगों का मन नहीं कर सकता है। अंशत: अनुभूति विषय के साथ अन्य कुछ संयुक्त कर मन धारणा कर सकता है। बिल्कुल अननुभूत वस्तु की धारणा मन के क्षेत्र के बाहर है।

– महाराज! तो क्या हमलोगों को पहले भगवान के दर्शन की अनुभूति हुई है कि हमलोग आशा कर रहे हैं कि हमलोगों को अनुभूति होगी?

महाराज – भगवत्प्राप्ति की अनुभूति हमलोगों को हुई है। भगवान के सम्बन्ध में जितनी धारणा है, उतना तो हमलोग समझते या जानते हैं। जब उतना भी हमलोग प्राप्त करते हैं, तो क्या नहीं कह सकते हैं कि उतना हमें पहले अनुभव हुआ है? जिसमें सिद्ध होना चाहते हैं, उस सम्बन्ध में धारणा ही अनुभूत धारणा है। जो साधन कर रहे हैं, वही तो सिद्धावस्था में प्राप्त करते हैं।

प्रश्न – महाराज! स्वामीजी ने सभी क्षेत्रों में आदर्श क्या होना चाहिए, उसे ही उपस्थापित किया है। क्या उसे हमलोग अपने जीवन में पूर्णतः व्यवहृत कर सकेंगे या कर पाना सम्भव है?

महाराज – हाँ, आदर्श क्या होना चाहिए, उसे हमलोगों को जानना आवश्यक है। वह हमलोगों के समक्ष रहने से उसको लक्ष्य कर आगे बढ़ सकेंगे। आदर्श को पूर्णत: अनुसरण करना सम्भव नहीं होने पर भी, हमलोगों को उसे जानना होना और उसे सम्मुख रखना होगा।

प्रश्न – महाराज ! 'दास-मैं' क्या है?

महाराज – मैं उनका दास हूँ। 'मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा।' ऐसा सोचते-सोचते 'मैं' (अहंकार) शुद्ध होगा और वहाँ उनका स्थान होगा। ठाकुर कहते हैं – 'नाहं नाहं तुहुँ तुहुँ।' 'मैं' तो किसी प्रकार भी नहीं जाएगा। तब रहे साला 'दास-मैं' होकर।

– महाराज! स्वामीजी ने कई बार शक्ति की बात कही है। यहाँ 'नाहं नाहं तुहुँ तुहुँ' अनुसरण के साथ स्वामीजी की शक्ति की धारणा कैसे होगी?

महाराज – विरोध है कि नहीं, यही तो?

– हाँ।

महाराज – स्वामीजी ही कहते थे –

कुर्मस्तारकचर्वणं त्रिभुवनमुत्पाटयामो बलात्।
किं भो न विजानास्यस्मान् रामकृष्णदासा वयम्।।

– "तारों को चबा जाएँगें, त्रिभुवन को बलपूर्वक उखाड़ देंगे, क्या तुम हमलोगों को नहीं जानते? हमलोग श्रीरामकृष्ण के दास हैं।" हमलोग रामकृष्ण के दास हैं, यही दास हैं! हनुमानजी जब राम-नाम का उच्चारण करते थे, तब वे कैसी अद्भुत शक्ति प्राप्त करते थे! वे कहते थे – रामदास हनुमान। यह परिचय ही उनकी विशाल शक्ति थी। श्रीराम की शक्ति से ही वे बलवान थे, शक्तिशाली थे। **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा राहत कार्य किए गये –

बाढ़ राहत-कार्य

रामकृष्ण मिशन आश्रम, गोहाटी, असम ने जुलाई माह में गोलपारा एवं कामरूप जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में ४८७ परिवारों को चावल, दाल, सोयाबीन, तेल, नमक, साड़ी, धोती, लुंगी, मच्छरदानी, बिस्कुट, हैंड सेनीटाइजर, मास्क, सर्फ, साबून का वितरण २१ और २१ जुलाई को किया।

पश्चिम बंगाल में अम्फान चक्रवाती तूफान राहत-कार्य

रामकृष्ण मिशन कोलकाता स्टूडेन्ट होम, बेलघरिया के द्वारा उत्तर २४ परगना जिले में २५ जून से २६ जुलाई के बीच १४२६ परिवारों में ३०० त्रिपाल, ३०० साड़ी, ३०० लुंगी, चावल, आटा, आलू, दाल, मूरी, सोयाबीन, तेल, चीनी, बिस्कुट, साबून वितरित किया गया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, सरिषा ने २४ मई से २८ जून तक दक्षिण २४ परगना जिले के ३५५७ परिवारों में १४३३ त्रिपाल, १५०० साड़ी, १००० लूंगी, ७९०५ किलो चावल, ९१८ किलो दाल, आलू, सोयाबीन, तेल, नमक, साबून वितरित किये तथा २००२१ लोगो को भोजन प्रदान किया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, सिकराकुलीनग्राम ने २८ जून से ७ जुलाई तक दक्षिण २४ परगना जिले में ३५५७ परिवारों में चावल, दाल, आलू, सोयाबीन, मसाला, बिस्कुट, दूध पाउडर, फेस मास्क और मच्छरदानी का वितरण किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मनसाद्वीप ने दक्षिण २४ परगना जिले के ९५ परिवारों को चक्रवात में क्षतिग्रस्त मकानों के पुनर्निर्माण हेतु निम्नलिखित सामग्रियों का वितरण किया – ६५८ एस्बेस्ट्स सीट, १४३ जी.आई. पाइप, ९२ टीन सीट, १४१ कांक्रीट पीलर, ५८१ लोहे की छड़े, ३९८ कीट मटका (रिज कवर), ५८ तिरपाल, १७६ बोरी सीमेन्ट, २३ क्यूबिक फीट सफेद बालू, ५६३ क्यूबिक फीट लाल बालू, ५३१ क्यूबिक फीट, चीप्स एवं २१,८४६ ईंटें वितरित कीं। यह केन्द्र कुल मिलाकर २१४ घरों की मरम्मत और पुनर्निर्माण हेतु सहायता करेगा, अब तक ९७ मकानों का कार्य सम्पन्न हो चुका है। इस आश्रम ने चक्रवात से क्षतिग्रस्त हुए एक विद्यालय के पुनर्निर्माण का कार्य भी आरम्भ कर दिया है। यह भवन आपदा की स्थिति में संरक्षण गृह के रूप में उपयोग की जा सकेगी।

कोरोना वायरस राहत-कार्य

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, कड़प्पा ने कड़प्पा जिले में २६ मई से २० जून तक ११२९ किलो चावल, ९९० किलो गेहूँ, ३०० किलो दाल, ३०१ लीटर तेल, २८८ किलो मसाले, २२ किलो आचार और ५१ किलो चीनी ५०० परिवारों में वितरित किया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, लखनऊ ने २१ मार्च से ३० मई तक अयोध्या के ७०० परिवारों में ३५४५ किलो चावल, ३५४५ किलो आटा, १४१२ किलो दाल, २६७७ किलो आलू, ७७६ किलो प्याज, ७४१ लिटर तेल, ७१९ किलो नमक, ३८ किलो विभिन्न मसाले, ११०५ डिटर्जेन्ट साबून, ११०५ स्नान-साबून, १४०० मास्क और १०० बोतल केश-तेल वितरित किया।

रामकृष्ण आश्रम और रामकृष्ण मिशन, बागेरहाट, बाँग्लादेश ने २४ से २६ जुलाई, २०२० तक बागेरहाट जिले के ५० परिवारों में चावल, दाल, आटा, तेल, नमक वितरित किए।

रामकृष्ण सेवाश्रम, चिट्टागाँग बाँग्लादेश ने अप्रैल से जून, २०२० तक चिट्टागाँग जिले के ७५० परिवारों में ६३०० किलो चावल, ८५० किलो दाल, ६४० लीटर तेल, ७५० किलो नमक एवं ३७५ किलो डिटर्जेंट पाउडर का वितरण किया।

रामकृष्ण मिशन, फिजि ने जुलाई माह में २२५० विद्यार्थियों हेतु भोज की व्यवस्था की। अभावग्रस्त विद्यार्थियों के लिये युनीफार्म, लेखन-सामग्री, चिकित्सा सेवा आदि की भी व्यवस्था की गई।